

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182529

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H831

Accession No. P. C. H 713

Author C49P

Title 21 वीं पाठ्यालय शिक्षण
पॉय कक्षा

This book should be returned on or before the date last marked below.

पाँच कहानियाँ

अनुराधा, सती, परेश, पतिदेव, एकादशी भगत



शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

किताब महल

इलाहाबाद

२३५, होर्नबी रोड, फोर्ट, बम्बई.

मूल्य १

इस अनुवाद के सब अधिकार प्रकाशक के हैं ।

मुद्रक—बी० एल० वारशनी, वारशनी प्रेस, कटरा, इलाहाबाद
प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।

शरतचंद्र के अन्य ग्रंथ

किताब महल की पुस्तकें जैसी सर्वोत्तम हैं वैसे ही शरत् बाबू के ग्रंथों के अनुवाद भी बहुत सुन्दर हैं । उनके निम्नलिखित ग्रंथ हमारे यहाँ से प्रकाशित हो चुके हैं ।

- (१) विराज बहू १॥) (२) तीन उपन्यास १॥)
(३) देहाती दुनिया १॥) (४) परिणीता ॥)

जो पाठक हमारे यहाँ के अनुवादों को पसंद करते हैं अपना नाम और पता लिख भेजें । जब-जब नये अनुवाद तैयार होंगे, हम अपने डाक खर्च पर उनके पास बी० पी० से भेज देंगे ।

—प्रकाशक

सूचो

कहानी				पृष्ठ
१—अनुराधा	...	...	...	१
२—सती	...	...	...	४४
३—परेश	...	...	...	६५
४—पतिदेव	...	...	...	७९
५—एकादशी भगत	...	...	...	१०

अनुराधा

(१)

अनुराधा की उम्र तेईस साल की है, लेकिन अभी तक वह अविवाहित इस बात पर एकाएक विश्वास नहीं होता फिर भी है यह सच । सुबह की बात जमींदार की कचहरी में हो रही थी । नये जमींदार (भूपति-ग्रामपति) नाम है हरिहर घोषाल । कलकत्ता रहते हैं । मालिक का छोटा लड़का जय अपने मौजे पर आया हुआ है ।

चुरुट को होठ से हटाते हुए विजय ने पूछा—‘क्या कहा गगन चटर्जी की न ने ? मकान नहीं छोड़ेगी ?’

जो आदमी यह खबर लाया था वह बोला—‘छोटे बाबू को आने दो, जो छु कहना है उन्हीं से कहूँगा, ऐसा कहा हुआ !’

विजय ने रोष भरे स्वर में कहा—‘इसका क्या मतलब ? मकान से उसे कालने के लिए खुद मुझे ही जाना पड़ेगा ?’

उत्तर नहीं पाकर विजय ने फिर कहा—‘अरे, वह कहेगी क्या ! मैं एक नहीं सुनता । फिर भी विनोद, उसके लिए मुझे और केवल मुझे जाना उसके पास ! वह श्रीमती महोदया यहाँ न आ सकेंगी ?’

विनोद ने नम्रता से कहा —‘यह भी मैंने कहा था । अनुराधा बोली—
भी अमर चट्टोपाध्याय की लड़की हूँ विनोद भैया, घर छोड़ कर यदि बाहर
जाना होगा तो उनको खबर करके हमेशा के लिए ही बाहर हो जाऊँ ।
बार बार घर-बाहर जाना-आना, यह मुझसे नहीं होगा ।’

‘नाम क्या कहा विनोद ? अनुराधा ? वाह क्या खूब ! कितना भड़ा
नाम है ! मालूम पड़ता है, अभी तक रस्ती जल गई मगर ऐंठ नहीं गई !

‘जी, हुआ !’

विनोद इसी गाँव --गणेशपुर—का रहनेवाला है । पहले यह गाँव अनु
के ही पूर्वजों की मिल्कियत था, पाँच साल से दूसरे के हाथ में पड़ा हुआ
इस गाँव से जो आमदनी है वह करीब दो हजार रुपये के लगभग पड़
परन्तु अनुराधा के पिता अमर चटर्जी का आठम्बर था बीस हजार वालो
तरह ! कर्ज में महाजन ने सब कुछ ले लेना चाहा, उसकी डिगरी भी अद
की ओर से हो गई । लेकिन वह उन्हें वेदखल नहीं कर सका । चटर्जी मह
कुलीन मनुष्य थे । उनके पूजा-पाठ और सिद्धि-साधना का भी लोगों प
प्रभाव न था । उनकी गृहस्थी की भग्न-तल नाव फ़िजूल खर्ची के स
ऊब-डूब कर रही थी, कट्टर धार्मिकता का पाल और सर्वसाधारण की
भक्ति का अनुकूल पवन पाकर यह नाव चटर्जी महाशय को जीवन की
सीमा तक पहुँचाने में समर्थ हुई । कहना पड़ेगा कि उनका जीवन एक प्र
से अच्छा ही कटा । मरे भी वह बड़ों की तरह । श्राद्ध भी उनका हुआ
धाम से । और यह भी सत्य कि वैभव को भी वह अपने साथ ही लेते
शत-सहस्र छिद्र होते हुए भी गृहस्थी की नाव अभी तक आकठभग्न ही
थी परन्तु अब वह ‘बाबू की हवेली’ सारी मर्यादा लेकर विलकुल ही डूब गई

बाप के मरने पर, विरासत में, गगन ने पाया केवल एक जीण-शीर्ण
पैतृक आवास, ऋण से नख-शिख तक लदी हुई गाँव की ज़मीन-जायदाद, कुछ
सड़ी गली मवेशी, कुत्ते और बिल्लियाँ, और क्वारों बहन—सगी नहीं सौतेली
थी—अनुराधा !

इस बार उसके ब्याह की बात चली गाँव के ही एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ । उनके पाँच-छै बाल-बच्चे, नाती-पोते समेत, हैं । दो साल हुए, उनकी स्त्री मर गई और अब आप शादी करना चाहते हैं ।

अनुराधा ने कहा—‘भैया, राजकुमार तो कोई हाथ लगा नहीं, तुम यहीं बातचीत पक्की कर लो । आदमी पैसेवाला है, खाने-पहिरने की तंगी नहीं होने देगा ।’

गगन ने विस्मित भाव से कहा—‘तुम कह क्या रही हो ? त्रिलोचन गांगुली के पास पैसा है सही लेकिन पता है उसके दादा ने खानदान छोड़ कर सतीपुरवाले चक्रवर्ती-परिवार में शादी की थी ! उनका क्या ठिकाना ?’

बहन ने कहा—‘और कुछ न सही, रुपया तां है । कुलीन के यहाँ उपवास करने की अपेक्षा नीच जातिवाले के यहाँ दो दाना अन्न पाना अच्छा है भैया !’

गगन ने माथा हिला कर कहा—‘नहीं, ऐसा नहीं होने का ।’

‘नहीं ? नहीं क्यों ? पिता जी उन बातों को मानते थे, तुम्हें क्या है ?’

यह ठीक था । पिता की तरह पुत्र सनातनी नहीं था । वह शराब, गोश्त और एक दूसरी चीज में एकदम खुले हाथ और खुले दिल का आदमी था .. वह विधुर था और उसके इस अभाव की पूर्ति दूसरे गाँव की एक नीच जाति की औरत कर रही थी, गणेशपुर में सब को यह पता था ।

गगन ने इशारा समझ लिया । वह गरज कर बोला—‘मैं दकियानूस नहीं हूँ, लेकिन तुम्हारे लिए कन्यापक्ष की आनुवंशिक मर्यादा को तिलांजलि देकर अपने चौदह पुरखों को कुम्भोपाक नरक में कैसे धकेल दूँ ? कृष्ण की सन्तान—हमारी कुलीनता नैसर्गिक है । जा जा ! ऐसी बुरी बात फिर अगर कभी मुँह से निकाली तो खैर नहीं.....’ वह इतना कह कर बाहर चला गया ।

गगन ने हरिहर घोषाल को पकड़ा—कुलीन ब्राह्मण को ऋणमुक्त करना होगा । लकड़ी के कारोबार से हरिहर लखपती बन गये थे । गणेशपुर थी उनकी ननिहाल । बचपन में उन्होंने इन ‘बाबू की हवेली’ वालों के अच्छे दिन

अपनी आँखों देखे थे, अनेकों अवसर उनके यहाँ बैठ कर लड़कू-पूड़ी उड़ाई थी। ज्यादा रुपयों का सवाल नहीं था, हरिहर बाबू ने गगन का अनुरोध मान लिया। चटर्जी बाबुओं का सारा ऋण अदा कर उन्होंने गणेशपुर मौजे को खरीद लिया। आवास-भूमि भी जो गिरवी रखी हुई थी, उसको भी महाजन से मुक्त करा लिया। शर्त यह रही कि हवेली के बाहरी तीन-चार कमरे कचहरी (दफ्तर) के लिए छोड़ कर अन्दरवाले हिस्से में गगन पूर्ववत् ही रहे।

ज़मींदारी खरीदने पर भी वहाँ के रैयत नये मालिक का अनुशासन मानने को तैयार न थे। जायदाद थोड़ी, आय साधारण—इसलिए कोई बड़े पैमाने पर उसका इन्तज़ाम करना असंभव था। इधर थोड़े ही दिन बीते थे कि गगन ने वह तिकड़म भिड़ाई जिससे हरिहर घोषाल का कोई भी पटवारी गणेशपुर में टिक नहीं सका। अन्त में स्वयं गगन की ही सलाह के मुताबिक वह कर्मचारी नियुक्त हुआ अर्थात् भूतपूर्व ज़मींदार नये ज़मींदार के गुमाश्ता बने। प्रजा ने अनुशासन मानना आरंभ किया, हरिहर को दम मारने की फुरसत मिली। लेकिन वसूली नहीं के बराबर थी, एक पैसा भी तहसील के नाम पर जमा न हो सका। खज़ाना खाली का खाली रहा। इस प्रकार दो साल और कटे। एक दिन समाचार मिला कि गुमाश्ता बाबू, गगन चटर्जी, लापता हो गये हैं। हेड-ऑफिस (कलकत्ता) से कुछ आदमी आये, उन्होंने खोज-खबर और खाना-तलाशी ली लेकिन पता चला कि गगन चटर्जी काफी रुपये वसूल करके तब फरार हुए हैं। पुलिस वालों ने बयान ली, अदालत बैठी, फिर खाना-तलाशी ली गई; कुछ भी बाक़ी न रखा गया तथापि न तो रुपये ही मिले और न गगन चटर्जी की सूरास ही कहीं लगी। गगन की बहन अनुराधा और दूर के सम्बन्ध का एक छोटा भांजा यही दोनों अब 'बाबू की हवेली' में रहते थे। पुलिस वाले ने उन्हें बहुत ही डराया, धमकाया, परन्तु कोई भी बात वे बतला न सके।

विजय विलायत हो आया था। परीक्षा में बार-बार वह अनुत्तीर्ण हुआ, हरिहर घोषाल की काफ़ी रक़म उसके पीछे ठंडी हो चुकी थी। फिर भी:

विदेश में रहते समय एक प्रकार का विकास उसके साधारण ज्ञान में जो हुआ था उसी के कारण उसमें कुछ अहंमन्यता आ गई थी और वह आज से दो साल पहले ही विदेश से लौट आया था। विजय का कहना था: विलायत में पास फेल दोनों बराबर है, गधे भी किताबें रटकर पास कर जा सकते हैं, विजय का यदि वही उद्देश्य होता तो वह भी हिन्दुस्तान में ही बैठे-बैठा किताबें रटता; यूरोप नहीं जाता। घर आकर वह काल्पनिक हान की आशंका का अभिनय करके पिता के कारोबार से चिमट गया, और नये सिरे से उसका सारा प्रबन्ध करने में अपनी अभिज्ञता का उपयोग करने लगा। कर्मचारी लोग उससे डरने लगे, मानो वह बाघ हो, उन्हें खा जायगा ! काम बहुत बढ़ गया था, किसी को गरदन उठा कर साँस लेने का मौका नहीं मिलता था कि उधर से गणेशपुर का यह गगन-काँड़ सामने आया। विजय बोला—‘यह तो मुझे मालूम ही था, पिताजी जो कुछ करेंगे उसका परिणाम ऐसा ही होगा। परन्तु उपेक्षा से तो काम नहीं चलने का, मुझे स्वयं जाकर हाँ का कोई न कोई प्रबन्ध करना ही होगा।’ इसीलिए विजय गणेशपुर आया है। मामूली बात है, इसके लिए इस गाँव-गंवई में अधिक समय देना व्यर्थ होगा, ज़ल्द से ज़ल्द वह इस गुत्थी को सुलझा कर कलकत्ता लौट आएगा—सारा बोझ उसी के कंधे पर है। बड़ा भाई अजय अटर्नी (बैरिस्टर का सलाहकार या अर्जीनवीश) है। अत्यंत स्वार्थी, अपना दफ्तर और अपनी दुनिया—स्त्री-पुत्र में ही मस्त, इसके अतिरिक्त और सांसारिक बातों में प्रंधा, किसी उत्तरदायित्व से पीछा छुड़ाकर भागने में उसकी दो आँखें बीस प्राँखों का काम करती हैं भाभी का नाम है प्रभावती देवी। आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के बी० ए० हैं, घर के और लोगों की बात जाने दीजिए, सास-सुर मरे कि जीते हैं इतना भर भी पूछ-ताछ करने का अवकाश नहीं पाती ! इसे से मकान के जिन पाँच-छः कमरों को लेकर उन लोगों का अवस्थान है, उस जगह परिवार का कोई भी आदमी बेखटके जा नहीं सकता ! उनके गौकर-नौकरानी अज्ञातकुलशील हुआ करते हैं। अगर बाबू जी ने आपत्ति की होती तो अभी तक मुसलमान बावर्ची भी उनके यहाँ रख लिया गया

होता । श्रीमती प्रभावती देवी को यह बहुत खटकता है । आशा है, ससुर के मरने पर वह अपनी इच्छानुसार रसोइया रख सकेंगी । देवर विजय को वह अवज्ञा की दृष्टि से देखती है, केवल जब से वह विलायत हो आया है तब से उसके प्रति भाभी की मनोवृत्ति कुछ उदार हुई है । दो-चार बार अपने हाथों पका कर उसे प्रभा ने खिलाया भी है । इसी बीच प्रभा की छोटी बहन अनिता के साथ विजय का परिचय हो गया है, वह इस बार बी० ए० (ऑनर्स) करके एम्० ए० में पढ़ रही है ।

विजय अपत्नीक है । स्त्री की मृत्यु के बाद ही वह इङ्गलैंड चला गया था । कह नहीं सकते, वहाँ उसने क्या किया । इस सम्बन्ध में किसी गंभीर गवेषणा की आवश्यकता है भी नहीं । किन्तु जब से विजय लौटकर आया है, स्त्री वर्ग के प्रति उसकी मनोवृत्ति कुछ रूखी-सी प्रतीत होती है । माँ ने एक बार उसके विवाह की चर्चा चलाई तो वह असहिष्णु हो उठा । तब से लेकर आज तक विजय के विवाह का प्रसंग त्रिशंकु की तरह अधर में ही लटका हुआ है ।

गणेशपुर में विजय ने एक रैयत के मकान को तत्काल कचहरी बनाया है । दो ही कमरे में जमींदारी के काम-काज चल सकते हैं । कारोवारी कागज-पत्र जो भी कुछ गगन के घर में मिल सके सब लाकर यहाँ रखे गये । अब कोशिश यह की जा रही है कि गगन की बहन, अनुराधा को और दूर के रिश्ते में भांजा लगनेवाले उस छोकरे को मकान से निकालने की । विनोद घोष के साथ अभी-अभी इसी बात का सलाह-मशविरा हो रहा था ।

कलकत्ता से आते समय विजय अपने लड़के—कुमार—को साथ लाया था, उसकी उम्र सात-आठ साल की रही होगी ।

देहात में होते हैं साँप-विच्छू, कीड़े-मकोड़े, इसी लिए माँ ने आपत्ति उठाई तो विजय बोला—‘बड़ी भौजी की कृपा से पोते-पोतियों की तुम्हें कोई कमी नहीं, गोबरगणेशों से सारा घर भर गया है । लेकिन इसको तो आदमी

बनने दो । विघ्न-बाधाओं की छाया में यदि कोई अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा हो तो तुम्हें इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ?’

सुनते हैं विलायत के साहब लोग भी ठीक ऐसा ही कहा करते हैं । लेकिन साहब लोगों की बात छोड़िए । यहाँ तो एक और ही बात है । विजय जब इङ्गलैंड प्रवास में था तो इस मातृवंचित बालक के दिन उपेक्षा और अवहेलना में ही कटे हैं । उसकी पितामही हमेशा ही रुग्ण रहती आई हैं, इसी से धन पर्याप्त होने पर भी कुमार की खोज-खबर रखने वाला कोई नहीं था । रूखे-सूखे वातावरण में ही कुमार पला है उपेक्षित स्थिति में ही वह बड़ा हुआ है । विजय जब विलायत से लौटा तब यह बात उसके कान और आँखों तक गई ।

गणेशपुर आते समय भाभी ने आकस्मिक सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—‘लड़का जा रहा है साथ बाबू, देखना, देहात का मामला ठहरा; होशियार रहना । लौटोगे कब ?’

‘—बस, दो ही चार दिन में ।’

‘—कहते हैं, वहाँ अपना मकान भी है । बाबा ने खरीदा था ।’

‘—खरीदा था, मगर अभी तक वह अपने कब्जे में नहीं आया ।’

‘—लेकिन, जब तुम खुद जा रहे हो बाबू तो दखल उसे कर ही लोगे ।’

‘—आशा तो है ।’

‘—हमें भी खबर देना !’

‘—क्यों भाभी ?’

उत्तर में प्रभा ने कहा—‘यहीं, पास ही तो है गणेशपुर । देहात अभी तक देखी नहीं, अब जाकर एक दिन देख आऊँगा । अनिता का भी कॉलेज बन्द है, वह भी तो साथ जाना चाहेगी ।’

बातचीत के इस अंश से विजय पुलकित हो उठा, उसने कहा—‘मकान दखल होने ही मैं तुम्हें सूचित करूँगा भाभी ! फिर पीछे ‘ना नू’ नहीं करना, अपनी बहन को तो साथ ज़रूर लाना ।’

अनिता तरुणी है, नयनाभिराम । बी० ए० आँनसँ है । स्त्रियों के प्रति यों तो विजय को अवज्ञा और उपेक्षा ही रहती है किन्तु किसी योग्य और प्रतिभा-शालिनी महिला को वह तुच्छ समझेगा, ऐसी बात हो नहीं सकती । देशत में शान्ति और निर्जनता होती है । कभी विजन, शून्य प्रान्तर में, कभी पुराने वृक्षों की छायावाले संकीर्ण ग्राम-पथ के किनारे अनिता के साथ देखा-देखी हो जाने की सम्भावना उस दिन विजय के चित्त को आन्दोलित कर गई थी ।

(२)

विजय ने पुराने ज़मींदार के उस बड़े मकान में प्रवेश किया । ठाट उसका विल्कुल साहबाना था, सिर पर हेट, मुँद में चुरट, पॉकेट में ।स्तौल, हाथ म लुड़ी । उसके साथ बड़े डील-डौल वाले दो हिन्दुस्तानी सिपाही थे । पीछे-पीछे कुछ और लोग, विनोद घोष और कुमार भी साथ था । मकान दखल करने में कुछ अशान्ति होने का डर था सही, लेकिन छोटे से लड़के को फिर भी विजय इसलिए साथ लाया था कि हल्ला-गुल्ला देखने से छोकड़े का दिल मज़बूत होगा । उसको गोबरगणेश बनाने की अपेक्षा सबल हृदय बनाने का अवसर था इसे भला वह कैसे छोड़ देता ? विनोद घोष यद्यपि बार-बार कह चुका था कि अनुराधा ठहरी स्त्री, बल प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं हागा । फिर भी पिस्तौल जब है तो उसे साथ ले चलना ही अच्छा है ।

विजय ने कहा—‘कहते हैं लड़की बदमाश है, उपद्रव खड़ा कर सकती है । उसी ने तो गगन चटर्जी को सलाह दी होगी । स्वभाव और चरित्र दोनों ही उसके अच्छे नहीं हैं ।’

‘जी’—विनोद ने जवाब दिया—‘ऐसा तो मैंने नहीं सुना है ।’

‘मैंने तो सुना है ।’

उस बड़े से मकान के अन्दर कहीं कुछ नहीं था, सूना आँगन, उदासीन वातावरण । विजय ने चारों तरफ देखा । बाबू लोगों का मकान था, लेकिन

अब उसकी लुटा एक जीर्ण-शीर्ण वृद्ध की श्री हीन कान्ति की सी प्रतीत हो रही थी। सामने वाला बरान्डा बिल्कुल ही टूट नहीं गया, परन्तु अबसान उसका समीप ही है। एक तरफ से बैठकखाना, भन्डार-घर आदि सब प्राचीनता का राग अलाप रहे थे। सीढ़ियों पर काई पड़ी थी।

हिन्दुस्तानी सिपाही ने कड़कती हुई आवाज़ से पुकारा—‘कोई है ?’

उसकी आवाज़ की कर्कशता में विनोद घोष और दूसरे लोगों को भी एक प्रकार की लज्जा अनुभव हुई; विनोद बोला—‘राधा बहन को मैं जाकर खबर कर देता हूँ,’ वह अन्दर चला गया। उसके कहने के ढंग से यह मालूम हो रहा था कि आज भी इस मकान में आकर उद्‌हड़ता दिखलाना इन लोगों को अनुचित मालूम होता है।

अनुराधा रसोई कर रही थी। विनोद ने जाकर नम्रतापूर्वक कहा—‘बहन ! छोटे बाबू बाहर खड़े हैं।’

वह बेचारी इस दुर्दिन की आशंकापूर्वक प्रतीक्षा कर ही रही थी। हाथ धोकर उठी। सन्तोष को पुकार कर कहा—‘बेटा ! बाहर जाकर दरी बिछा दे, बोल कि मौसी अभी आती हैं।’ फिर अनुराधा ने विनोद को कहा—‘मुझे कुछ देर नहीं लगेगी भैया, बाबू को कहो कि गुस्सा न करें। मेरी ओर से उन्हें बैठने के लिए कहो।’ विनोद ने लज्जित मुद्रा में कहा—‘क्या करूँ बहन ! हम गरीब लोग ज़मींदार का हुक्म कैसे टाल सकते हैं, मज़बूर होकर—’

‘वह सब मैं समझती हूँ, विनोद भैया।’

विनोद चला गया। बाहर शतरंजी (दरी) बिछी थी लेकिन कोई उस पर बैठा नहीं था। विजय अपनी हलकी छड़ी को दाएँ हाथ की उँगलियों से नचा रहा था साथ ही सिगार भी पीता जा रहा था।

कुछ देर बाद सन्तोष बाहर आया, चौखटे की ओर उसने इशारा किया—कि मौसी आई, खड़ी है।

विजय ठिठक गया। भले घर की लड़की उसको क्या कह कर सम्बोधन करना चाहिए किन्तु कमज़ोरी या ढिलाई दिखाना अनुचित होगा, इसी से

कड़कती हुई आवाज़ में विजय ने ओट में खड़ी अनुराधा को लक्ष्य करके कहा—‘यह मकान अब हमारा है, तुम्हें पता है न ?’

जवाब मिला—‘जानती हूँ ।’

‘तो छोड़ कर किसी दूसरी जगह क्यों नहीं चली जाती हो ।’

अनुराधा आड़ में खड़ी रह कर उस लड़के के द्वारा बातचीत करने की कोशिश कर रही थी । लेकिन छोड़ना अभी उतना चालाक नहीं हो पाया था और नये ज़मींदार का आतंक भी उसको कम नहीं था । डर के मारे उससे मध्य-भाषी बनने का यह अभिनय न हो सका । विजय पाँच मिनट तक धैर्य-पूर्वक कथाक्रम को समझने की चेष्टा करता रहा । बाद में एकदम बिगड़ कर बोल उठा—‘तुम्हारी मौसी को जो कुछ कहना हो सामने आकर कहे, मेरे पास बरबाद करने के लिए वक्त नहीं है; और मैं कोई बाघ या भालू थोड़े ही हूँ, उसको खा नहीं जाऊँगा । मकान उसे छोड़ना पड़ेगा, क्यों नहीं छोड़ेगी ?’

अनुराधा बाहर नहीं आई, लेकिन अन्दर से ही जवाब दिया । साफ शब्दों में उसने कहा—‘मकान छोड़ने की तो कोई बात नहीं थी । आपके पिता हरिहर बाबू ने कहा था, कि इसके अन्दर का एक हिस्सा हम अपने रहने के काम में ला सकते हैं ।’

‘क्या कोई सबूत है ?’

‘नहीं । लेकिन वह तो अभी जीते हैं, उनसे पूछ कर मालूम कर सकते हैं ।’

‘मैं क्यों जाकर पूछूँ । यही बात थी तो लिखवा क्यों नहीं लिया उनसे ।’

‘दादा को इसकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई । कहने की अपेक्षा लिखने का मूल्य ज्यादा होगा, यह बात उनकी समझ में न आई होगी ।’

विजय को इस बात का कोई मुनासिब जवाब नहीं सूझा तो वह चुप रह गया । लेकिन लुन भर बाद अन्दर से ही जवाब आया—‘दादा (भाई) अपनी बात पर नहीं रहे, इसलिए अब यह सवाल उठ ही नहीं सकता । इस मकान में रहने का अधिकार अब हमें नहीं है । लेकिन मैं ठहरी अकेली,

सा- में है यह अनाथ लड़का। मैंने इसको नहीं, मैंने ही पाल-पीस के बड़ा किया है। इस विषम स्थिति में अगर आप मुझे दो-चार दिन इस मकान में रहने नहीं देंगे, तो कहाँ जाऊँगी, यही मैं सोच रही हूँ।’

विजय ने कहा—‘यह मुझसे क्यों पूँछ रही हो, तुम्हारे भाई कहाँ है?’

लड़की ने कहा—‘पता नहीं वे कहाँ हैं, लेकिन मैं जो अभी तक आप से नहीं मिली, सो इसी डर से कि आप नाहक परेशान होंगे।...’ वह कुछ देर चुप रहा। फिर अपने को संभाल कर बोली—‘आप ठहरे मालिक, आप से कुछ नहीं छिपाऊँगी। खोल कर अपनी मुसीबत की बात आप से कही है; जोर जबरदस्ती से एक दिन भी इस मकान में हम रह नहीं सकती। कुछ रोज़ बाद हम खुद ही चली जायगी।’

अनुराधा के स्वर से मालूम पड़ रहा था कि उसका आँखों में आँसू आ गए हैं। विजय को दुःख हुआ और थोड़ी खुशी भी हुई। उसने सोचा था कि इस मकान को देखल करने में क्या पता कितना हल्ला-गुल्ला मचाना पड़ेगा लेकिन हुआ तो कुछ भी नहीं। यह तो आँसू से दया की भीख माँग रही है। विजय के पाकेट में जो पिस्तौल था, और सिपाहियों के हाथ में जो लाठियाँ थी, वह सब चुपचाप विजय का मखौल उड़ा रही थी लेकिन कमज़ोरी दिखाने से तो काम नहीं चलेगा। नये मालिक ने कहा—‘रहने देने में कोई एतराज़ नहीं, लेकिन मकान की हमें भी ज़रूरत है। दूसरी बात यह कि इस मकान को देखने के लिए हमारे घर की स्त्रियाँ आना चाहती हैं।’

अनुराधा ने कहा—‘ठीक तो है, आएँ, वे खुशी खुशी आएँ, हमारी भी आँखें पवित्र होंगी, साग-सत्तू जो कुछ जुरेगा, लेकर उनका स्वागत करूँगी, इस मकान के बाहरी हिस्सों में आप रह सकते हैं और अन्दर दुतल्ले पर बहुत से कमरे हैं उनमें स्त्रियाँ रहेंगी। उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा। और देहात का मासला ठहरा, उन्हें आदमी की तो ज़रूरत होगी ही, मैं सब काम कर दूँगी।’

इस बार विजय को शर्म हुई। उसने विरोध करते हुए कहा—‘नहीं नहीं ऐसी बात भी कभी हो सकती है ? उनके साथ नौकर-चाकर अपने ही रहेंगे, तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा। क्या मैं भीतर जाकर कमरों को एक बार देख सकता हूँ।’

‘वाह क्यों नहीं, यह तो आप ही का मकान है, आइए।’

विजय जब अन्दर घुसा, तो राधा का सारा मुखमण्डल उसको आँखों के सामने उद्भासित हो गया। सिर पर कपड़ा था सही, लेकिन उसे घूँघट नहीं कह सकते। साड़ी उसकी साफ नहीं थी, देह में गहने नहीं थे, कलाइयों में सोने की दो-चार चूड़ियाँ थी, पुराने ज़माने की। आड़ से उसका अश्रुसिक्त कण्ठस्वर विजय को बहुत ही मधुर लगा था, और उसने सोचा था कि देखने-सुनने में वह वैसी ही होगी। संप्रति दरिद्र रहने पर भी वह अच्छे खान-दान की लड़की थी, लेकिन देखने में कोई खास बात नज़र नहीं आ रही थी। रँग साँवला था, उसमें गौर अश कम कृष्ण अंश ही ज्यादा था। साधारण तथा देहात का दस-पाँच औरतें देखने में जैसी होती हैं, वह भी वैसी ही थी। शरीर कृश था, किन्तु मज़बूत। सोकर-बैठकर केवल आलस्य में इसके दिन नहीं कट रहे हैं, यह ठीक था। सबसे बड़ी विशेषता जो उसकी थी वह थी शरीर की गठन। ऐसा सुडौल शरीर देखने से एकवार ही आश्चर्य में पड़ जाना असम्भव नहीं।

लड़की ने कहा—‘विनोद मैया ! मैं रसोई घर में जाती हूँ। तुम बाबू को सब दिखला दो।’

‘तुम नहीं चलोगी राधा बहन ?’

‘न।’

विजय अन्दर आकर घूम-घाम कर सब देखने लगा। मकान के बहुत से खण्ड थे। पुराने ज़माने का माल-असबाब अभी तक पड़ा था, कुछ भग्न

लेकिन कभी रही होगी । मकान के मुख्य भाग की तरह यह कमरे भी जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे । दरिद्रता का दाग सब पर पड़ चुका था ।

विजय जब नीचे उतर आया तो अनुराधा रसोई घर के द्वार पर खड़ी हो गई । दरिद्र होने पर भी वह भद्र परिवार की लड़की थी । इसलिए 'तुम' कह कर उसे सम्बोधन करते हुए विजय को लज्जा हुई । उसने कहा—'आप कितने दिन इस मकान में रहना चाहती हैं ?'

'ठीक तो अभी नहीं कह सकती हूँ, लेकिन जितने दिन आप कृपापूर्वक रहने दें ।'

'कुछ दिन तक तो चल सकता है, परन्तु अधिक दिनों तक नहीं । तब फिर कहाँ जायँगी ?'

'इसी चिन्ता में तो रात-दिन रहती हूँ ।'

'लोग कहते हैं आप गगन चटर्जी का पता जानती हैं ?'

'लोग और क्या कहते हैं ?'

विजय इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका । अनुराधा ने कहा—'नहीं जानती हूँ, सो तो मैं आप से पहले ही कह चुकी हूँ । लेकिन यदि जानती भी होती, तो अपने भाई को मैं पकड़वा दूँ, यही आप सलाह देते हैं ।'

अनुराधा का स्वर तिरस्कार-मिश्रित था । विजय कट कर रह गया, सोचा, कुलीनता का चिह्न अब भी इनके हृदय-पट पर से मिटा नहीं है । प्रकट रूप से उसने कहा—'आप से ऐसा करने को मैं नहीं कहता हूँ । मैं स्वयं ही उसे खोज निकालूँगा, भागने नहीं दूँगा । लेकिन इतने अरसे से जो वह हमारी जड़ खोद रहा था, क्या उससे भी आप अनभिज्ञ थीं !'

अनुराधा ने जवाब नहीं दिया । विजय फिर बोलने लगा—'दुनियाँ में कृतज्ञता नाम की भी कोई चीज़ है, यह बात भी आपने कभी अपने भाई को समझाई ? हमारे पिता ठहरे भोलानाथ, आपके खान्दान के प्रति उनकी शुरु ही से ममता रही है, उसी ही विश्वास पर उन्होंने गगन चटर्जी को सारी जायदाद सौंप दी । उस विश्वास का मूल्य क्या यही होना चाहिए । लेकिन मैं यदि देश में रहा, तो ऐसा नहीं होने दूँगा । यह बात अब गाँठ बाँध रखिये ।'

अनुराधा चुप ही रही। किसी भी बात का जवाब न पाकर विजय अन्दर ही अन्दर गरम हो उठा। जो भी थोड़ी करुणा उसके हृदय में आई थी, वह कपूर बन कर उड़ गई। वह कठोर होकर बोला—‘सभी जानते हैं, मैं कड़ा आदमी हूँ, यहाँ दया-माया का नाम नहीं, कोई गुनहगार मुझसे रिहाई नहीं पा सकता। आप की यदि भाई से भेंट हो, तो यह बता देना।’

अनुराधा पूर्ववत् मौन रही। विजय कहता गया—‘आज सारे मकान का अधिकार मैंने लिया। बाहरी हिस्से की सफाई हो जाने पर दो दिन बाद मैं इसी मकान में चला आऊँगा, स्त्रियाँ बाद में आयेंगी। आप नीचे एक कमरा लेकर रहें लेकिन देखियेगा, माल-असबाब कोई इधर-उधर न हो।’

इतने में कुमार बोला—‘बाबा प्यास लगी है, पानी पिऊँगा।’

‘यहाँ पानी कहाँ से पिलाऊँ।’

अनुराधा ने हाथ हिला कर इशारा किया, अपने पास बुला लिया। रसोईघर के पास ले जाकर पूछा—‘बच्चा ! नारियल का पानी पियेगा ?’

‘हाँ पिऊँगा।’

सन्तोष ने नारियल का मुँह काट दिया और फिर कुमार ने जी भर कर अधपके नारियल का पानी पी लिया। बाहर आकर बोला—‘बाबा ! तुम भी डाव (नारियल) पिओगे ? बड़ा मीठा है।’

‘नहीं।’

‘पिओ न बाबा, बहुत से हैं, सभी तो अपने हैं।’

बात कुछ नहीं थी, तो भी इतने लोगों के बीच लड़के के मुँह से यह बात सुन कर विजय को लज्जा हुई, उसने कहा—‘नहीं नहीं, मैं नहीं पिऊँगा, तू आ जा।’

उस बड़े मकान के मुख्य भाग पर अधिकार करके विजय बैठ गया। दो कमरों में उसका डेरा था, बाक़ी में कचहरी। विनोद घोष किसी ज़माने में

ज़मींदारी कचहरी में नौकर था। और उसी योग्यता पर यहाँ वह नया गुमाश्ता बनाया गया, लेकिन भंभट्ट दूर नहीं हुआ। बात यह थी कि गगन चटर्जी रुपया लेकर हाथ से लिखी रसीद देना अपमान की बात समझता था और प्रजा को उससे अविश्वास की गंध आती थी। जैसे चटर्जी खानदान के लिए यह कोई बड़प्पन की बात नहीं थी। जब से गगन लापता है रैय्यत मुसीबत में पड़ गई है। दी हुई रकम का लिखित प्रमाण न मिलने से लोगों को पकड़-पकड़ कर रोज़ हाज़िर किया जाता है, वे रोते हैं, चिल्लाते हैं, किसने कितना दिया है, और किसके पास कितना बाकी है, यह निश्चय करना मुश्किल हो गया है। विजय जितनी ज़ल्दी कलकत्ता लौटने की सोच रहा था वह हुआ नहीं। आज-कल करते-करते बारह दिन कट गए। इधर लड़का सन्तोष के साथ दोस्ती कर बैठा है। उमर में तीन-चार साल का छोटा है ? सामाजिक और सांसारिक भेद भी दानों में बहुत बढ़ा था। फिर भी दूसरा कोई संगो-साथी न रहने से वह इसी के साथ हिल मिल गया है। इसी के साथ घर के अन्दर रहता है, बाहर के बागों में भटकता फिरता है, नदी के किनारे पेड़ों पर चिड़ियों का घोंसला खोजता फिरता है। सन्तोष की मौसी के पास ही ज्यादातर खाता-पीता है, और देखा-देखी कुमार भी अनुराधा को मौसी कह कर पुकारता है। उधर ज़मींदार के कामों में, रुपए-पैसे के हिसाब में विजय इतना उलझा पड़ा है कि बच्चे की निगरानी करना उसके लिए असंभव है। जब समय मिलता है, तब छोड़के का पता नहीं। कभी पकड़ में आने पर कुमार को वह फजीहत करता है, पास में बैठा रखता है, किन मौका पाने पर लड़का अनुकूल हव में कनकौए की तरह उड़ जाता है ? और मौसी के रसोई-घर में घुस जाता है सन्तोष के साथ बैठ कर दोपहर में वह भात खाता है, और शाम को रोट और नारियल के लड्डू बराबर हिस्से करके उसी के साथ खाता है।

उस दिन शाम को कचहरी खाली पड़ी थी, कोई आया नहीं था विजय ने चाय पीकर सिगार जलाई और सोचा कि नदी की तरफ ज़रा चक्क लगा आएँ। अचानक उसे खयाल आया कि दिन भर कुमार को आज ना

देखा । पुराना नौकर खड़ा था, उससे पूछा—‘कुमार कहाँ है रे ।’ उसने इशारा से बतलाया—‘मकान के अन्दर ।’

‘भात खाया था ?’

‘नहीं ।’

‘जबर्दस्ती पकड़ करके क्यों नहीं खिलाया ।’

‘यहाँ नहीं खाना चाहता है, गुस्सा के मारे छोड़ कर चला जाता है ।’

‘कल से मेरे ही साथ उसके खाने की जगह बना देना ।’

इसके बाद न जाने क्या ध्यान में आया कि विजय घूमने नहीं गया । सीधे अन्दर चला गया । बड़े से आँगन के दूसरे छोर पर से अपने लड़के की कंठध्वनि उसे सुनाई दी—‘मौसी एक रोटी और दे, और दो लड्डू जल्दी देना ।’

जवाब मिला—‘नीचे आकर ले जा बेटा । तुम्हारी तरह क्या मैं भी पेड़ पर चढ़ सकती हूँ ।’ लड़के ने कहा—‘पेड़ पर चढ़ना मौसी कोई कठिन बात नहीं है । उस मोटी डाल पर पैर रख कर इस छोटी डाल को पकड़ लो । फिर ज़रा ज़ोर लगाओ, चढ़ क्यों न सकेगी ?’

विजय नज़दीक आ गया । रसोई-घर के सामने आम का एक बड़ा पेड़ था । उसकी दो बड़ी-बड़ी डालों पर कुमार और सन्तोष बैठे हुए थे । पैर हिला-हिला कर खाते जा रहे थे । विजय को देख कर दोनों डर गए । अनुराध रसोई-घर के चौखटे की आड़ में हो गई ।

विजय ने पूछा—‘क्या उन लोगों के खाने की जगह वही है क्या ?’

किसी ने उत्तर नहीं दिया । विजय ने अन्दर खड़ी अनुराधा को लक्ष्य करके कहा—‘देखता हूँ, उसने आपको परेशानी में डाल रखा है ।’

इस बार अनुराधा ने मधुरकण्ठ से उत्तर दिया —‘जी फिर भी तो आग्ने उसको शिर पर चढ़ा रखा है, क्यों भला ।’

‘ऐसा नहीं करने से उपद्रव बढ़ेगा, इसी लिए ।’

‘लेकिन घर पर इस प्रकार उपद्रव नहीं करता है

‘हो सकता है, उसके माँ नहीं, पितामही विस्तरे पर पड़ी रहती है, बाप रहते हैं काम-काज में, फिर वह किसके बल पर कूदेगा वहाँ ।’

विजय यह बात नहीं जानता सो नहीं, तो भी लड़का मातृहीन है, यह दूसरे के मुख से सुन कर उसे दुःख हुआ । उसने कहा—‘देखता हूँ, धीरे धीरे आपने बहुत सी बातें जान ली हैं । यह सब किसने कहा आपको ? कुमार ?’

अनुराधा ने आहिस्ते से कहा—‘यह सब कहने की अभी उसकी उमर नहीं हुई है । तो भी सुना है उसी के मुँह से । दोपहर को कड़ी धूप में उसको मैं बाहर नहीं निकलने देती, तो भी मेरी आँखों में धूल भोंक कर भाग निकलता है । जिस दिन नहीं जाने पाता, उस दिन लेटे-लेटे मेरे पास घर की बातें करता है ।’

विजय अनुराधा का मुँह देख नहीं पा रहा था, तो भी पहिले दिन की भाँति आज उसी स्त्री का कंठस्वर इसको बड़ा मधुर प्रतीत हो रहा था । इसी लिए, केवल सुनने की नीयत से कथा के क्रम को उसने जारी रक्खा—‘इस बार घर लौटने पर कुमार को दिक्कत उठानी पड़ेगी ।’

‘क्यों भला ?’

‘उपद्रव भी एक नशा है । उपद्रव करने का अवसर नहीं पाने पर कष्ट होता है, शरीर में पीड़ा होती है, लेकिन घर पर इस नशा की खूराक उसको कहाँ से मिलेगा, दो दिन में ही तो वह भागना चाहेगा ।’ अनुराधा ने आहिस्ते से कहा—‘नहीं भूल जायगा । बेटा कुमार नीचे आवो, रोटी ले जाओ ।’ कुमार के हाथ में कटोरी थी, वह नीचे उतर आया, और मौसी के हाथ से कुछ रोटियाँ और लड्डू लेकर उन्हीं से सट कर खड़े-खड़े ही खाने लगा, फिर पेड़ पर नहीं चढ़ा । विजय ने देखा, वह सब उसके ठाट-बाट और मान-मर्यादा की तुलना में निम्न भले ही हो, परन्तु मर्यादा में रत्ती भर भी कम नहीं है । क्यों लड़का मौसी के रसोई-घर के प्रति इतना आसक्त हो गया है, यह बात विजय के समझ में आ गई । वह यही सोच कर आया था कि कुमार के कारण पढ़ने वाले भोजन व्यय की बात उठा कर, आधुनिक शिक्षाचार के

अनुसार पुत्र की तरफ से संकोच दिखलाएगा, किन्तु उसमें बाधा उपस्थित हुई। कुमार बोला—‘मौसी कल की तरह आज भी चाँदपूरी (गुफिया) बनाने को तुम्हें कहा था अभी तक क्यों नहीं बनाया ?’

मौसी ने कहा—‘जुलुम हो गया बेटा जुलुम। असवाधानी में सारा दूध बिल्ला पी गया। कल फिर ऐसा नहीं होगा ?’

‘कौन बिल्ला मौसी ? उजला ?’

‘वही होगा’—अनुराधा अपनी उँगलियों को कुमार के शिर के बालों में फेरने लगी। विजय ने कहा—‘देखता हूँ, उपद्रव तो आसमान तक पहुँच गया है।’

कुमार ने कहा—‘पीने का पानी कहाँ है मौसी ?’

‘ओह भूल गई बेटा, ला देती हूँ।’

‘तुम सभी तो भूल जाती हो मौसी। कुछ याद भी रहता है।’

विजय बोला—‘रात-दिन आपको बक-बक करना पड़ता होगा।’

‘जी’—अनुराधा हँस पड़ी। असवाधानी से यह हँसी विजय की दृष्टि में आई। पुत्र के उपद्रवपूर्ण आचरणों के लिए वह उस महिला से क्षमा नहीं माँग सका। उसे लगा कि उसके भद्रजनोचित यह बातें कहीं अनुराधा को अभद्र न प्रतीत हों। कहीं अनुराधा के मन में यह भावना न उदित हो कि मेरी दरिद्रता का यह उपहास करने आए हैं।

दूसरे दिन दोपहर को अनुराधा कुमार और संतोष के आगे भात परोस कर त्रकारी परोस रही थी, उसके शिर पर से कपड़ा खिसका हुआ था, शरीर के और भी भागों पर से वस्त्र खिसक गया था, अकस्मात् किसी मनुष्य की छाया अनुभव करके उसने नज़र उठा कर देखा, तो सामने छोटे बाबू को खड़ा पाया। उसने ससम्भ्रम शिर को साड़ी के अंचल से ढँक लिया और उठ कर खड़ी हो गई।

विजय ने कहा—‘एक निहायत जरूरी सलाह के लिए आपके पास आया हूँ। विनोद घोष इसी गाँव का आदमी है। आप बहुत दिनों से उसे देखती

आई हैं, भला वह कैसा आदमी है ! उसको अपनी ज़मींदारी का नया गुमास्ता बनाया है । उस पर विश्वास किया जा सकता है कि नहीं इस बारे में आपका क्या विचार है ?’

विनोद सात-आठ दिन से काम कर रहा है भरसक जी लगा कर काम करता है, कोई गड़बड़ी नहीं की है, अचानक उसके चरित्र पर छोटे बाबू को क्यों सदेह हुआ ? यह बात अनुराधा के समझ में नहीं आई । उसने विजय से पूछा—‘विनोद भैया ने कुछ किया है क्या ?’

‘अभी तक तो कुछ नहीं किया है, लेकिन सावधान तो रहना चाहिए ।’

‘उनको हम लोग अच्छा आदमी ही समझते हैं ।’

‘सच ? या किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए, इसी लिए तो ऐसा नहीं कह रही हैं ।’

‘मैं किसी को भला-बुरा कहूँ । क्या उसका भी कोई मूल्य है ?’

‘वाह ! क्यों नहीं । वह तो आपही को हर बात में प्रमाण मीने बैठा है ।’

अनुराधा ने ज़रा सोच कर कहा—‘वह अच्छे आदमी हैं । फिर भी आप नज़र रखें । उदासीनता दिखलाने से अच्छे आदमी भी यदि बुरे हो जायें; तो असंभव नहीं ।’

विजय ने कहा—‘सच ही तो कह रहीं हैं आप । अपराध का कारण खोजने पर कभी-कभी स्तब्ध रह जाना पड़ता है ।’

अपने लड़के को लक्ष्य करके उसने कहा—‘किस्मत तुम्हारी अच्छी निकली, जो एक मौसी पा गए हो । नहीं तो इस गाँव जंगल में आधा दिन बिना खाए ही कटता ।’

अनुराधा ने धीरे से पूछा—‘आपको यहाँ खाने-पीने में कोई तकलीफ तो नहीं हो रही है ।’

विजय ने कहा—‘नहीं, यूँ ही कहा । बहुत दिनों से देश-परदेश घूमा हूँ । खाने का खर्च अखरता नहीं है ।’

विजय चला गया । अनुराधा ने खिड़की की किवाड़ी के फांक से देखा—
अभी तक विजय ने नहाया भी नहीं है ।

(४)

इस घर में आने के बाद एक पुरानी आरामकुर्सी खोज निकाली गई । शाम को उसी की दोनों हथेलियों पर अपने पाँव फैलाकर विजय बैठा रहा । आँखें मुँदी थी, और चुस्ट पी रहा था । आवाज़ आई—‘बाबू ?’ आँख खोल कर उसने देखा तो ज़रा दूर पर एक वृद्ध खड़ा हुआ आदर और सम्मान से उसको संबोधन कर रहा है । विजय उठ बैठा । उक्त सज्जन की उम्र साठ से ऊपर होगी । किन्तु चेहरा रूखा-सूखा नहीं था । शरीर भी सामर्थ्य से रहित नहीं प्रतीत होता था । मूँछ पक कर सफेद हो गई थी । लेकिन शिर के बाल गंगायमुनी थे । सामने के दो चार दांतों को छोड़ कर और सब विद्यमान थे । टसर की कोट, सिल्क की चादर, पैरों में पालिश किये हुए जूते, घड़ी का चेन सोने का था, उसमें स्वर्ण-निर्मित बघनखा लटक रहा था । देहात में ऐसे आदमी को लोग दौलतमन्द ही समझते हैं । पास के एक दूटे हुए टूल पर विजय के चुस्ट का सामान रखा था, उसे हटा कर जगह बनाई गई । उक्त सज्जन उस पर बैठे फिर कहा—‘नमस्कार बाबू ।’

‘नमस्कार’

आगंतुक ने कहा—‘आप इस गाँव के ज़मींदार हैं । आपके पिता महा-शय प्रतिष्ठित और लखपती व्यक्ति हैं । सुबह उनका नाम लेने से लोगों का भला होता है । और आप उन्हीं के सुपुत्र हैं । स्त्रियों पर आप जैसे व्यक्ति अगर दया न करें, तो बाढ़ में बह जायँगे ।’

‘कौन स्त्री ? कितना रुपया बाकी है ।

आगंतुक ने कहा—‘रुपए की बात नहीं है । स्त्री और कोई दूसरी नहीं अमर चटर्जी की कन्या, गगन चटर्जी की सौतेली बहन । यह उनके बाप

का घर है। वह रहेगी नहीं, चली जायगी, सब व्यवस्था हो चुकी है। लेकिन आप जो उसे भगा रहे हैं, यह क्या आपके लिए उचित है ?'

इस अशिक्षित वृद्ध के प्रति क्रोध करने से काम नहीं चलेगा, विजय यह बात जानता था। किन्तु वृद्ध की बातचीत का टंग देख कर वह अन्दर ही अन्दर धधकने लगा। बोला—'अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को मैं समझ लूंगा। किन्तु आप कौन होते हैं बीच में उसकी तरफ से वकालत करने वाले ?'

वृद्ध ने कहा—'मेरा नाम है त्रिलोचन गांगुलि, पास ही यहाँ मसजिदपुर मेरा घर है। सब पहचानते हैं, जानते हैं। आप के पिता-माता का आशीर्वाद है, इस इलाके में ऐसा कोई नहीं है, जो मेरे सामने जाकर हाथ न फैलाता हो। विश्वास न हो आपको तो विनोद घोष से पूछ लीजिये।'

विजय ने कहा—'मुझे जब हाथ फैलाना होगा तब आपको खोज लूंगा। लेकिन आप जिसकी वकालत करते हैं, उसके कौन होते हैं, यह जानना चाहता हूँ।'

आगन्तुक ने रसिकता के बहाने ज़रा मुस्कराते हुए कहा—'कुछ दिनों के बाद ही मेरा उसके साथ विवाह होगा।'

विजय ने आश्चर्य से चकित होकर कहा—'विवाह करेंगे ! आप ! अनुराधा के साथ ?'

'जी यह मेरा दृढ़ विचार है। जेठ को छोड़ कर और अच्छा मुहूर्त नहीं होता है। नहीं तो यह शुभ कर्म कभी का हो चुका होता। और आप से भी मुझे अनुरोध नहीं करना पड़ता कि कुछ दिन और उसे इसमें रहने दें।'

विजय कुछ देर स्तब्ध रहा। फिर उसने पूछा—'इस ब्याह की बातचीत किसने पक्की की है ? गगन चटर्जी ने ?'

आगन्तुक ने आँखें लाल करके कहा—'वह तो फरार है। रैयत लोगों का सर्वनाश करके चंपत हो गया। इतने दिनों तक वही तो बाधा डाल रहा था। नहीं तो अगहन ही में शादी हो गई होती। बोलता था, हम कुलीन हैं, कृष्ण की सन्तान हैं, वंश वालों के घर में अपनी बहन को नहीं जाने देंगे; यही थी

उसकी बोली । अब वह अहंकार कहाँ रहा, वह टेक कहाँ गई । वंशज के घर में स्वयं प्रार्थना करके आना पड़ा । आजकल के दिनों में खान्दान को कौन पूँछता है महाशय ? रुपया ही खान्दान, रुपया ही इज्जत, और रुपया ही सब कुछ है । मैं ठीक कहता हूँ न ?'

विजय बोला—'हाँ ठीक । अनुराधा ने मंजूर कर लिया है !'

आगन्तुक ने दम्भ भरी मुद्रा में अपनी जाँघ पर ताल ठोकी । और बोला—'मंजूर ? कहते हैं क्या ? अरे प्रार्थना पर प्रार्थना पहुँच रही है । शहर से आकर आपने एक धक्का लगाया कि दोनों आँखों के सामने अंधेरा—हे भगवान ! कहाँ जाऊँ नहीं तो मेरा तो खयाल बदल गया था । लड़के नाराज़, बहुएँ नाराज़, लड़कियाँ और दामाद सब ग्रीच में अड़ गये थे—मैं भी सोचता था कि अच्छा संसार तो है; लेकिन आदमी के ज़रिये राधा ने रो-रो कर के कहलवाया—गांगुली महाशय, अपने चरणों में इस दासी को स्थान दीजिये । आपके घर में भाड़ू देकर निर्वाह करूँगी सो कबूल है । क्या करूँ मैंने मंजूर कर दिया ।'

विजय गूंगा होकर बैठा रहा ।

बुढ़दा फिर बोलने लगा—'शादी इसी मकान में होगी । मेरे मकान में भी हो सकती थी, लेकिन वह न जाने कैसा लगेगा ? गगन चटर्जी की न जाने कौन एक फूफी है, वही कन्यादान करेगी । अभी यदि आप राजी हों, तो सब ठीक हो जायगा ।'

विजय ने शिर उठा कर कहा—'राजी होकर मैं क्या करूँगा महाशय ? भगा नहीं दूँगा, यही तो । अच्छा, वही होगा । अभी आप जाएँ, नमस्कार ।'

'नमस्कार महाशय, नमस्कार । ऐसा ही होगा । आपके पिता ठहरे लखपती, सुबह उनका नाम लेने से लोगों का भला होता है ।'

'सो तो होता है । आप अभी जायँ ।'

'जाता हूँ महाशय, जाता हूँ, नमस्कार ।'

त्रिलोचन चले गये ।

आगन्तुक जब चला गया तब विजय चुपचाप अपने को समझाने लगा कि इस विषय में वह क्यों अपना माथा खराब कर रहा है, उसका क्या बिगड़ता है। और बात भी ठीक है। इसके सिवा उस लड़की के लिए चारा ही क्या है। यह कोई ऐसी बात नहीं है, जो अपूर्व हो, यह कोई अघटित घटना नहीं है, तो फिर विजय को ही इसकी क्या फिक्र पड़ी है। अचानक उसको विनोद घोष की बात याद आई, वह उस दिन कह रहा था—‘अनुराधा अपने भाई के साथ भगड़ा करती है कि कुल-गौरव लेकर वह क्या करेगी। खाने-पहनने के लिए मोटा-भोटा उसे मिल जाय तो वही उसे काफी होगा। गगन ने अपनी बहन के विचार का विरोध किया था—क्या तू बाप-दादा के नाम डुबायेगी। अनुराधा ने जवाब दिया था—तुम उनके वंशधर हो, उनका नाम अगर रख सको तो रखो। मुझसे यह सब न होगा। इस बात का मर्म विजय नहीं समझ सका, खुद भी वह कुलीनता में बहुत बड़ा विश्वास नहीं रखता था तथापि उसकी सहानुभूति गगन के पक्ष में हो गई और अनुराधा की दर्लालों पर जितना ही वह विचार करता, उतनी ही वह उसे निलंज और पतिता मालूम देती।

इधर बैठक में लोग इकट्ठे हो गए थे, अब कुछ काम की बात शुरू होनी चाहिए, लेकिन विजय को आज यह सब कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। दरवान से कहला भेजा और वे लोग चले गए। विजय फिर अकेला नहीं बैठ सका और न जाने क्या सोच कर मकान के अन्दर घुसा। रसोई-घर के सामने खुला बरान्डा था, उस पर चटाई बिछाकर अनुराधा लेटी हुई थी, पास में उसके दोनों ओर कुमार और सन्तोष थे। कहानी चल रही थी महा-भारत की। रात को ज़रा वह सबेरे ही रसोई से निपट लेती है और रोज़ इसी प्रकार लड़कों को लेकर शाम को कहानी कहती-सुनती है, उसके बाद कुमार को खिला-पिलाकर बाप के पास बाहर भेज देती है। चाँदनी रात। आम के वृक्ष के घने निविड़ और विरल पत्रों से छुन कर आने वाली खंडित चन्द्रमा की चाँदनी उन लोगों के शरीर और मुँह पर पड़ रही थी। वृक्ष की

चितकबरी छाया में एक आदमी को इस ओर आते देख कर अनुराधा चकित हो गई और उसने पूछा—‘कौन ?’

‘मैं विजय ।’

तीनों जने घबड़ा कर उठ बैठे । सन्तोष छोटे बाबू से बहुत डरता था । पहिले दिन की बात उसे भूली नहीं थी । वह उठ कर खड़ा हो गया, कुमार ने भी उसका अनुकरण किया ।

विजय बोला—‘त्रिलोचन गांगुली को आप पहचानती हैं ? आज वह मेरे पास आए थे ।’

अनुराधा विस्मित हुई—‘आपके पास ? आप तो उनके खदुका नहीं हैं ?’

‘नहीं । लेकिन अगर ऐसा होता तो आपको सुविधा होती । मेरे एक दिन के अत्याचार का बदला आप किसी और दिन चुका सकती ।’

अनुराधा चुप रही । विजय ने कहा—‘वह जतला गए हैं कि आपके साथ उनकी शादी होगी । क्या यह सच है ?’

‘जी ।’

‘आपने स्वयम् प्रार्थी होकर उन्हें राजी किया है ?’

‘जी ।’

‘अगर ऐसी बात है, तो शरम की बात है । सिर्फ आपके लिए ही नहीं, हमारे लिए भी ।’

‘आपके लिए क्यों ?’

वही तो मैं बताने आया हूँ । त्रिलोचन कह गया है, कि हम आपको भगाने आए हैं, इसी डर से आकुल होकर आपने उसके सामने विवाह का प्रस्ताव किया है । आपने यह कहलवाया है कि खड़ा होने की जगह नहीं है । मतलब यह कि स्वयम् प्रार्थी होकर मान-अपमान का ध्यान न रखकर त्रिलोचन को आपने विवाह करने के लिए तैयार किया है । नहीं तो, इस उमर में शादी करने की इच्छा वह छोड़ चुका था । केवल आप के रोने-धोने पर मिलाते करने पर वह राजी हो गया है ।’

‘जी, यह सब सच है।’

विजय ने कहा—‘इस मकान से आपको भगाने की बात मैं लौटा लेता हूँ और अपने इस व्यवहार के लिए क्षमा माँगता हूँ।’

अनुराधा चुप रही। विजय बोला, इस बार अपनी ओर से आप विवाह के उस प्रस्ताव के लौटा लेने का वचन दीजिये।

‘नहीं, वो तो नहीं हो सकता। मैंने वचन दे दिया है—सारी दुनियाँ अब इस बात को जान गई है—लोग उसकी हँसी उड़ावेंगे।’

‘और इसकी हँसी नहीं उड़ावेंगे! बल्कि और ज्यादा लोग हँसेंगे। परिवार में उसके झगड़ा होगा, उसकी जो अपनी छोटी-सी दुनियाँ है, उसमें गड़बड़ी मच जायगी। आपकी भी अशान्ति का अन्त नहीं रहेगा। क्या यह सब बात आपने सोची है।’

अनुराधा ने नमी से कहा—‘सब सोच कर देख लिया है, और मुझे विश्वास है, यह सब कुछ नहीं होगा।’

यह सुन कर विजय स्तब्ध रह गया, उसके मुँह से निकला—‘वह बुड्ढा कै दिन जियेगा?’

अनुराधा ने जवाब दिया—‘पति की आयु के सम्बन्ध में संसार की सारी स्त्रियाँ बड़-चढ़ के आशावादी होती हैं। ऐसा भी तो हो सकता है, कि सौभाग्य चिह्न धारण किये मैं ही पहले इस धरा-धाम से कूच कर जाऊँ?’

विजय को इसका उत्तर नहीं सूझ रहा था। वह चुपचाप खड़ा रहा। दोनों ओर से थोड़ी देर तक चुप्पी रही। पीछे अनुराधा ने विनीत भाव से कहा—‘आपने हमें यहाँ से जाने की आज्ञा दी है अवश्य, लेकिन कभी फिर उस बात को दुहराया नहीं। मैं दया की पात्र नहीं हूँ तो भी आपने पर्याप्त दया दिखलाई है, अन्दर ही अन्दर आपके प्रति मैं कितनी कृतज्ञ हूँ, कह नहीं सकती।’

विजय से एक भी शब्द न पा कर वह बोलने लगी—‘भगवान जानते हैं, आपके विरुद्ध किसी के पास एक शब्द भी मैंने नहीं कहा है। वैसा करना

अन्याय होता और सरासर झूठ भी। गांगुलि महाशय ने आपको यदि कुछ कहा होगा, तो वह अपनी ही ओर से, उसे मेरी बात मत समझिए। फिर भी उनकी ओर से मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ।’

विजय ने पूछा—‘आप लोगों की शादी कब होगी ? तेरह जेठ को, फिर तो अभी एक मास बाकी है, है न ?’

‘जी हाँ।’

‘इसमें फेर-फार की कोई गुंजायश नहीं।’

‘नहीं। आखिर उनसे यही भरोसा है।’

विजय कुछ देर चुप रह कर बोला—‘अब मुझे कुछ कहना नहीं है, लेकिन आपने अपने भावी जीवन पर थोड़ा सा भी विचार नहीं किया। दुःख है तो यही।’

अनुराधा ने जवाब दिया—‘थोड़ा नहीं बहुत अधिक विचार किया है छोटे बाबू। रात-दिन मैं यही तो सोचती रहती हूँ। आप मेरे हितैषी हैं, आपके प्रति कृतज्ञता जाहिर करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं; किन्तु आप स्वयम् ही एक बार मेरी परिस्थिति पर थोड़ा दृष्टिपात तो कीजिए। धन नहीं, रूप नहीं, घर नहीं, अभिभावक नहीं, अकेली हूँ। देहात का मामला ठहरा, रुढ़ि में आनखशिख आवद्ध समाज के अत्याचारों से रक्षा पाने की कोई भी जगह मुझे दीखती नहीं है। उमर हो गई तेईस-चौबीस की, फिर इनको छोड़ कर और कौन मुझे शरण देगा, आप ही कहिए ? और, जब कोई नहीं पूछेगा, तो दो मुट्ठी अब और लज्जा निवारण के लिए वस्त्र हाथ फैलाने पर भी मुझे भला कौन देगा ? या जब सुनेंगे तो आप ही क्या कहेंगे।’

सब बात यथार्थ थी। विजय किसका विरोध करता ? दो-तीन मिनट तक चुप रह कर गम्भीर मुद्रा में ओर भारी आवाज़ में वह बोला—‘इस समय मैं आपकी क्या कोई सेवा कर सकता हूँ ? काश, आपके लिए मैं कुछ कर पाता।’

अनुराधा ने कहा—‘आपने अनेक उपकार मेरे किए हैं, आप का सहारा पाकर मैं निर्द्वन्द्व हूँ। चन्द्र और सूर्य की तरह भासमान यह दो लड़के मेरे बगल

मैं हैं, यह क्या काफी नहीं है । आपसे प्रार्थना यही है कि मेरे भाई के अपराधों की जवाबदेह मुझे न समझें, जान-बूझ कर मैंने कोई अपराध नहीं किया है ।’

‘सो मैं सब जानता हूँ, आपको यह कहना नहीं होगा’—विजय बाहर चला गया ।

(५)

कलकत्ते से कुछ साग-सब्जी फल-फूल और मिठाइयाँ आई थी, विजय ने नौकर को टोकरी थमा दी और रसोई-घर के सामने आकर बोला—कि घर में ही हैं, क्या ?

अन्दर से मुलायम आवाज़ में जवाब आया—‘हूँ’

विजय ने कहा—‘बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ । हमारे समाज में होतों, तो आपको मिस चटर्जी या मिस अनुराधा के नाम से पुकारा जा सकता था, लेकिन यहाँ वह नहीं चलेगा । आपके दोनों बच्चों में से कोई होता, तो उसको भी यह कहने से काम चल जाता कि अपनी मौसी को बुलाओ लेकिन वे भी तो गायब हैं । फिर क्या कह कर पुकारूँ आप ही कहिए ।’

अनुराधा चौखटे के आड़ से बोली—‘राधा कह कर पुकारें ।’

विजय बोला—‘वैसा करने में कोई आपत्ति नहीं, लेकिन साहबाना रोब-दाब से नहीं, देनदार था मेरा गगन चटर्जी और वह गया है भाग; फिर आप मुझे क्यों मालिक समझेंगे आपको क्या गर्ज पड़ा है ।’

अन्दर से आवाज़ आई—‘ऐसा न कहें छोटे बाबू ! महाजन, महाजन ही हैं ।’

विजय बोला—‘सो बात नहीं है, हाँ उमर में मैं आपसे बहुत बड़ा हूँ । नाम लेकर यदि पुकारूँ तो बुरा न मानें ।’

‘नहीं, क्यों बुरा मानूँगी ।’

विजय ने अच्छी तरह देख लिया है कि प्रीति और घनिष्ठता का आग्रह जितना उसकी ओर से हो रहा है, उतना दूसरी ओर से नहीं। कुछ भी हो अनुराधा सामने नहीं आती, और बराबर नम्र और नपे-तुले शब्दों में उत्तर देकर बातचीत को खत्म करना चाहती है।'

विजय ने कहा—'घर से कुछ साग-सब्जी, कुछ फल-मूल और मिठाइयाँ आई हैं। टोकरी अन्दर रख लें, बच्चों को देना।'

—'खैर, आवश्यकतानुसार रख लिया जायगा, बाकी आपके पास भेज दिया जायगा।'

—'नहीं वैसा मत कीजियेगा। मेरा जो महाराज है, उसे रसोई नहीं करना आता। देखता हूँ, दुपहर से शिर ढक कर लेटा पड़ा हुआ है। क्या पना, आपकी देहात के मलेरिया ने तो उसे नहीं पकड़ लिया। फिर तो भुगतना पड़ेगा।'

'मलेरिया तो यहाँ नहीं है। लेकिन महाराज अगर लेटा ही पड़ा रहा, तो इस वक्त आपके लिए खाना कौन पकायेगा?'

—'इस वक्त की बात छोड़ दीजिये कल सबेरे देखा जायगा। कूकर साथ है, नौकर से भी काम चल सकता है।'

—'तकलीफ होगी।'

—'नहीं। आदत है, तकलीफ की बात थी तो बच्चे के खिलाने में। लेकिन वह भार तो आपने उठा ही लिया है। क्या पक रहा है? टोकरी खोल कर देखिये न, अगर कोई चीज़ अभी काम आ जाय।'

—'काम में तो लगेगा ही, लेकिन इस वक्त कुछ पकाना नहीं है।'

—'नहीं, क्यों भला?'

कुमार को ज़रा बुखार आ गया है। रसोई चढ़ाऊँगी तो वह भी खाने की ज़िद करेगा। दोपहर का कुछ रखा है, सन्तोष का काम उसी से चल जायगा।'

—'बुखार आ गया है कुमार को? कहाँ है वह?'

‘—मेरे बिस्तरे पर लेटे-लेटे सन्तोष के साथ बात कर रहा है। आज कहता था, बाहर नहीं जाऊँगा, तुम्हारे ही पास सोऊँगा।’

‘—सोने को सो सकता है, लेकिन ज्यादा आदर-सम्मान पाने पर मौसी को छोड़ कर वह घर भी नहीं जाना चाहेगा। तब उसको लेकर एक टंटा खड़ा होगा।’

‘—नहीं, कुमार सुशील लड़का है।’ विजय ने कहा—‘सुशील और दुःशील को तो आप पहचानती हैं, लेकिन मैंने सुना है, आपके प्रति भी कम उपद्रवी नहीं है।’

अनुराधा छन भर चुप रह कर बोली—‘उपद्रव वह मेरे पास ही करता है, दूसरे के पास नहीं।’

‘—सो मैं जानता हूँ, लेकिन मौसी की बात और है, चाची तो उसकी यह सब बर्दाश्त नहीं करेंगी। और यदि विमाता घर में आ गईं, फिर वह तो ज़रा सा भी अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेंगी। आदत बिगड़ने पर मुसीबत ही समझिए लड़का मुसीबत में पड़ेगा, उसके लिए आप ऐसी विमाता लाने क्यों चले?’

‘—लाने-लिवाने की बात नहीं है। अगर बदकिस्मती होगी, तो वह अपने आप आ धमकेंगी। उस हालत में मुसीबत दूर करने के लिए मौसी की शरण में जाना पड़ेगा यदि वह राजी हों तो।’

अनुराधा बोली—‘जिसके मां नहीं है, उसको मौसी फेंक तो देगी नहीं, कितनी ही मुसीबत उठानी पड़े वह उसको पालपोस कर बड़ा करेगी ही।’

‘—आपकी यह बात सुन रखता हूँ।’ विजय जाने लगा। कि हठात् वह फिर लौट आया, बोला—‘अगर धृष्टता न समझे तो एक बात पूछूँ—’

‘—पूछिए।’

‘—कुमार की चिन्ता पीछे की जायगी, अभी उसका बाप बीता है। उसको जैसा अनाथ लोग समझते हैं वह वैसा नहीं, लेकिन सन्तोष का क्या

होगा ! मातृ-पितृ वंचित इस अनाथ बालक को यदि नये मौसा त्रिलोचन गांगुलि ने अपने घर में जगह न दी, तो आप उसका क्या प्रबन्ध करेंगी, यह कभी आपके ध्यान में आया है ?’

अनुराधा ने कहा—‘मौसी को जगह मिलेगी और उसके भगिनीपुत्र को नहीं ?’

‘—मिलनी तो चाहिए, परन्तु गांगुलि महाशय को देखने से इस प्रकार का भरोसा मुझे नहीं होता है ।’

इस बात का जवाब अनुराधा तत्काल न दे सकी, सोचने लगी फिर शान्त और स्थिर स्वर में उसने कहा—‘तो फिर किसी पेड़ के नीचे हम दोनों को थोड़ी जगह अवश्य मिल जायगी, वहाँ कौन रोकेगा ?’

विजय बोला—‘यह विचार किसी भी मौसी कहलाने वाली स्वाभाविक ही है, किन्तु होगा वैसा नहीं । फिर मेरे यहाँ आप सन्तोष को भेज दीजियेगा । कुमार का बालमित्र है वह, यदि कुमार आदमी बनेगा, तो वह भी आदमी बनेगा ही ।’ अन्दर से कुछ जवाब नहीं आया, कुछ देर की इन्तजारी के बाद विजय बाहर चला गया ।

दो तीन घन्टे के बाद बाहर आकर सन्तोष बोला—‘खाना तैयार है, मौसी आपको बुला रही है ।’

‘—मुझे ?’

‘—जी हाँ ।’ लड़का अन्दर चला गया ।

खाने की जगह रसोईघर में ठीक की गई थी । विजय आसन पर बैठा ।

‘—रात तो कट ही जाती, आपने तकलीफ क्यों की ?’

अनुराधा कुछ दूर पर जैसे खड़ी थी, चुपचाप वैसे ही खड़ी रही ।

खाने की चीजें बहुत नहीं थी, लेकिन जो भी थीं, उनसे परोसने और पकाने की निपुणता साबित हो रही थी । खाते खाते विजय ने पूछा—‘कुमार ने क्या खाया ?’

‘—साबूदाना खाया है ।’

‘—भगड़ा तो नहीं किया ।’

अनुराधा हँस पड़ी—‘मेरे पास सोने के कारण आज कुमार की आत्मा शान्त है । थोड़ा भी बकवास उसने नहीं किया ।’

विजय बोला—‘उसके कारण आप भ्रष्ट में पड़ गईं’, परन्तु यह हमारा दोष नहीं है । वह खुद ही किस चतुरता से आपके हृदय में प्रवेश कर गया है । मैं यही सोचा करता हूँ ।’

‘—मैं भी ठीक यही सोचती हूँ ।’

‘—वह जब घर चला जायगा, तो आपको तकलीफ होगी ।’

अनुराधा चुप रही । कुछ क्षण के बाद बोली—‘ले जाने के पहले आप मुझे एक वचन दे जाइयेगा, कि वहाँ उस पर नज़र रखेंगे और कोई भी तकलीफ उसे पहुँचने नहीं देंगे ।’

‘—लेकिन मैं तो बाहर के कामों में मशगूल रहता हूँ । मुझे सन्देह है कि आपका वचन निभा सकूँगा ।’

‘—तो फिर उसे मेरे पास रख जाइयेगा ।’

‘—आप भूल जाती हैं, यह तो और भी असम्भव है ।’ विजय हँस कर खाने लगा । एक बार बोला—‘मेरी भाभी आने वाली थीं, शायद वे लोग आयेंगी ।’

‘—क्यों ?’

‘—जिस खयाल से कहा था, वह उड़ गया है । शहर के लोग देहातों की ओर पैर बढ़ाना नहीं चाहते चलो अच्छा ही हुआ । अकेला मैं ही आपकी असुविधाओं को काफी बढ़ाये हुए हूँ । और वे लोग कदाचित् आ जाते, तो आपका यह भ्रष्ट और बढ़ता ।’

अनुराधा ने इसका प्रतिवाद किया—‘यह कहना अनुचित है, मकान मेरा नहीं, आप ही लोगों का है, फिर भी मैं हा सारी जगहों को छेके बैठी रहूँ, और वे आएँ तो उन पर गुस्सा करूँ, इससे बढ़ कर अन्याय और क्या होगा । मेरे सम्बन्ध में इस तरह की बात सोचना सचमुच अविवेक का सूचक है ।’

आपने जितनी दया दिखलाई है, मेरी तरफ से उसका क्या यही प्रतिदा होगा ?'

अनुराधा ने इतनी सारी बात इस दंग से कभी नहीं की। यह सब सुन क विजय चकित रह गया। इस देहाती लड़की को जैसी अशिक्षित और भोली भाली वह समझता था, वह वैसी नहीं है। कुछ देर चुप रह कर अपन अपराध स्वीकार करते हुए उसने कहा—'सचमुच यह बात मेरे मुँह से नह निकलनी चाहिए थी। जिनके सम्बन्ध में यह लागू होता है, आपका स्थान उनसे कहीं ऊँचा है। परन्तु दो-तीन दिन के बाद मैं घर चला जाऊँगा, यहाँ आते ही पहले आपके प्रति अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार किये हैं, सो बात यह थी, कि मैं आप से अनजान था। और दुनियाँ में देखता हूँ, ऐसा ही होत है। तो भी जाने से पहले आप से क्षमा माँगता हूँ। यद्यपि मुझे बड़ी लाज लग रही है।'

अनुराधा ने आहिस्ते से कहा—'क्षमा ? क्षमा नहीं मिलेगी।'

'—नहीं मिलेगी ? क्यों भला ?'

'—आने के बाद अब तक जो अपराध किये हैं, उसकी क्षमा नहीं मिलेगी—' यह बोल कर वह हँस पड़ी। दीप के मृदु-मधुर आलोक में उसका स्मित मुख विजय की आँखों में चमक उठा और क्षण भर के लिए एक अज्ञात विस्मय से उसका सारा अन्तःकरण आन्दोलित हो जाने के बाद थोड़ा-सा शान्त हुआ। थोड़ी देर मौन रहने के बाद वह बोला—'अच्छा रहने दीजिये, मैं क्षमा नहीं चाहता हूँ। अपराधी बने रह कर ही यदि आपको याद आता रहूँ, तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।'

दोनों निःशब्द। कुछ क्षण तक उस छोटे से कमरे का चुद्र वातावरण निस्तब्ध-सा रहा।

अनुराधा ने मुँह खोला—'फिर कब आवेंगे आप ?'

'—बीच-बीच में आता ही रहूँगा। यद्यपि आप से फिर नहीं मिल सकूँगा।'

उत्तर पक्ष से इसका प्रतिवाद नहीं हुआ। बात ठीक थी।

खाना खत्म करके जब विजय बाहर जाने लगा तो अनुराधा बोली—
‘टोकरी में बहुत तरह की सब्जियाँ हैं, बाहर नहीं भेजा। कल सबेरे भी आप यहीं भोजन करेंगे।’

‘—अच्छी बात है। लेकिन आपको पता है, मुझे भूख बहुत लगती है। नहीं तो यही कहता कि कल ही क्यों, जो भी दो-चार दिन मैं यहाँ हूँ, सो आपके यहाँ ही रहूँगा। आपके हाथ का पका खाना खाकर ही यदि घर जाता तो कैसा अच्छा होता—’

‘—यह हमारा सौभाग्य है।’

दूसरे दिन सबेरे ही खाने पीने की बहुत सारी चीजें अनुराधा के समक्ष रसोईघर के बरामदे पर ढेर हो गईं। उसने एतराज नहीं किया, सब रख दिया।

इसके बाद तीन दिन कौन कहे पाँच दिन बीत गये। कुमार का बुखार आज हट गया था। और वह स्वस्थ हो गया था। इस अवधि में यह देख कर विजय को चोभ हुआ, कि पहुनाई में ज़रा भी कोर-कसर न होते हुए भी परिचय की दूरी उसी प्रकार अटल बनी हुई है, तिल भर भी घनिष्ठता आगे नहीं बढ़ी है। बरामदे पर खाने की जगह ठीक करके अनुराधा रसोईघर चली जाती है, वहाँ खाने की चीजें यथा-विधि सजा कर सन्तोष के द्वारा मेहमान के सामने थाली भेजवा देती है। कुमार पास आकर कहता है—बाबा मौसी कहती हैं, मछली के तले हुए टुकड़े तो आप कुछ नहीं खाते ! दो-चार और खाइए। विजय कहता है—अपनी मौसी को जाकर कहो कि मुझे राक्षस न समझें। मनुष्य जितना खा सकता है, उतना तो खा ही लेता हूँ। कुमार लौट करके फिर कहता है—मछलियाँ रहने दीजिये, शायद वह अच्छी नहीं बनी हैं, लेकिन कल की तरह आज अगर कटोरे का दूध न पियेंगे तो मौसी को दुख होगा। विजय ने कमरे में अन्तर्वर्त्तिनी अनुराधा को सुनाने की नीयत से

उच्च-स्वर में कहा—तुम्हारी मौसी अगर कल से इतने बड़े कटोरे के बदले गमला में भर कर दूध देने लगे, तो शायद सारा का सारा मैं पी जा सकूँ ।

(६)

इस तरह यह पाँच दिन कटे । स्त्रियों में जो एक प्रकार का प्रबन्ध-नैपुण्य होता है, विजय इससे भली-भाँति परिचित नहीं था । माँ को वह बचपन से ही बीमार और अकर्मण्य देखता आया, गृहणीत्व का कोई भी कर्त्तव्य उन्होंने पूरा नहीं किया । अपनी स्त्री दो ही साल तक जीती रही । उन दिनों वह विद्यार्थी था । बाद का जीवन अधिकांश प्रवास में कटा । उधर की जानकारी के भले-बुरे अनेक संस्मरण उसके हृदय में आते थे, परन्तु वे सारे किसी अयथार्थ पुस्तक की कल्पित कहानियों के समान प्रतीत होते थे । यहाँ के जीवन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था ।

और एक है विजय की भाभी, प्रभावती । जिस परिवार में उसकी आलोचना होती, उसका विचार होता, उससे वह दूर रहती है । विजय ने माँ को कई दिन तक रोते देखा है, पिता को विरक्त और उदास देखा है । यह सब उसे अनूचित प्रतीत हुआ है । बड़ी चाची छोटे देवर के पुत्र की खोज-खबर न रखे, बहुएँ सासु-ससुर को धता बतायें, तो इसमें कोई अविहित या अन्यायोचित आचरण होता है, विजय का यह ख्याल नहीं है । उसकी अपनी स्त्री भी यदि ऐसा करती, तो इसमें उसे दुःख न होता । लेकिन चिरकाल व्यापिनी उसकी इन धारणाओं को इन पाँच दिनों में एक प्रकार का धक्का लगा है, और उनकी जड़ हिल गई है । आज शाम की ट्रेन से विजय जाने वाला है, नौकर सामान बाँध रहा है, दो-तीन घन्टा की देर है, सन्तोष आकर बोला—‘खाना तैयार है, मौसी बुलाती है—’

‘—इस वक्त ।’

‘—बी हँ ।’

लड़का चला गया। विजय अन्दर गया तो देखता है, विधान पूर्वक उसी बरामदे पर आसन बिछा हुआ है। मौसी का गला पकड़ कर कुमार भूज रहा था, उससे अपने को मुक्त कराकर अनुराधा रसोईघर चली गई।

आसन पर बैठ कर विजय ने कहा—‘यह क्या किया आपने ?’

अन्दर से अनुराधा बोली—‘ज़रा सो खिचड़ी पका रखो है। खाइए।’

उत्तर देते समय आज विजय को गला साफ कर लेना पड़ा, उसने कहा—‘बेवक्त क्यों कष्ट उठाया, और नहीं तो दो-चार लूचि (पतली पूड़ियाँ) छान लेतीं।’

अनुराधा बोली—‘लूचई तो आप खाते नहीं। घर पहुँचते रात के दो-तीन बज जायँगे। बिना कुछ खाये-पिये उपवास करते हुए वहाँ पहुँचेंगे, इसमें भी क्या कम कष्ट होगा ? बार-बार याद आयेगा कि लड़का बिना कुछ खाये ही गाड़ी में सो रहा है।’

विजय चुपचाप कुछ देर तक खाता रहा। फिर बोला—‘विनोद को कह दिया है, आपका खयाल रखेगा। दस-पाँच दिन जो इस मकान में रहना था तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं।’

कुछ देर चुपचाप रहने के बाद वह फिर बोला—‘और एक बात मैं बतलाये जाता हूँ। अगर भेंट हो, तो गगन को कहना, मैंने उसको माफ कर दिया है। लेकिन वह कभी फिर इस गाँव में पैर न रखें। अन्यथा माफ़ो नहीं मिलेगी।’

‘कभी मुलाकात हुई, तो कह दूँगो’—अनुराधा कुछ देर चुप रही। फिर कहा—‘कुमार का हाल सुनेंगे, आज वह आपके साथ जाना ही नहीं चाहता। क्यों नहीं जाना चाहता, सो भी नहीं कहता।’

विजय बोला—‘कहना नहीं चाहता या जानता ही नहीं। और मून ही मून यह भी जानता है कि वहाँ जाने पर उसे कष्ट होगा।’

‘—कष्ट क्यों होगा ?’

‘—उस घर का वही नियम है। लेकिन कष्ट से क्या, उसी घर से तो वह इतना बड़ा हुआ है।’

‘—तब तो जाने का काम नहीं है, मेरे पास रहने दीजिए।’

विजय ने हँसते हुए कहा—‘मुझे एतराज कोई नहीं है लेकिन मास भर से ज्यादा तो वह यहाँ पर रह भी नहीं सकेगा। फिर क्या फायदा?’

दोनों चुप रहे। अनुराधा बोली—‘उसकी विमाता जो बन कर आने वाली है; सुना है, वह पढ़ी-लिखी हैं।’

‘—हाँ वह बी० ए० पास हैं।’

‘—लेकिन बी० ए० पास तो इसकी बड़ी चाची भी हैं।’

‘—निश्चय, लेकिन बी० ए० की किताबों में देवर के लड़के की हिफाजत वाली बात नहीं लिखी है। वह परीक्षा उन्होंने पास नहीं की है।’

‘—लेकिन बीमार सास-ससुर की सेवा, क्या वह भी किताब में नहीं लिखी है?’

‘—नहीं। यह तो हँसी की बात है।’

‘—वह कौन-सी बात है जो हँसी की नहीं है?’

‘—है, इन बातों की ओर थोड़ा-सा ध्यान न देना ही हमारे शिक्षित समाज का विधि-विधान है।’

अनुराधा ने थोड़ा-सा रुक कर कहा—‘यह सब आप ही लोगों को मुबारक हो। लेकिन जो बात सबके लिए बराबर है, वह यह है कि बच्चे की परिचर्या की अपेक्षा बी० ए० पास करना कोई बड़ी बात नहीं। इस प्रकार की लड़की को घर में लाना ठीक नहीं है।’

‘लेकिन किसी को तो लाना ही होगा। समाज के जिस वर्ग की आबोहवा में हम खड़े-खड़े साँस ले रहे हैं वहाँ बी० ए० पास लड़की होने से ही इज्जत भी होती है, और मन भी मान जाता है। और शायद घर का काम-धाम भी

चलता है। मातृ-पितृ वंचित अनाथ भगिनीपुत्र को लेकर पेड़ के नीचे रहना मंजूर करने वाली लड़की को लेकर जंगल में तो हम रह सकते हैं, समाज में नहीं।'।

अनुराधा का स्वर क्षण भर के लिए तीव्र हो उठा—'नहीं, सो नहीं होगा। एक निष्ठुर विमाता के हाथ में आप उसे सौंप नहीं पायेंगे।'।

विजय बोला—'उस बात की आशंका नहीं है, क्योंकि हाथों पर सौंप देने के बाद भी कुमार स्वयं नीचे आ जायगा। लेकिन इससे उनकी निष्ठुरता कैसी प्रमाणित हुई। और, अपनी भावी पत्नी की तरफ से आपके इस मंतव्य का मैं तीव्र विरोध करता हूँ। सम्भ्रान्त रुचि के अनुकूल जो एक प्रकार की उपेक्षा होती है, उसमें लेशमात्र भी बर्बरता रहती होगी, यह दोष आप मत दें।'।

अनुराधा हँस कर बोली—'विरोध आप चाहे जितना करें किन्तु मैं पूछती हूँ कि इसका मतलब क्या हुआ ?'

विजय कहने लगा—'हमारे पारिवारिक बन्धनों की सीमा बहुत बड़ी है। उसका रूप-रंग आकृति सब स्वतंत्र है। उसकी शृंखला रस नहीं खींचती, पत्ते का रंग हरा होने से पहले ही पीला पड़ जाता है। आप ठहरें देहाती परिवार की लड़की। स्कूल-कालेज में कभी जाने का मौका नहीं मिला है, पार्टी और पिकनिक का आपको पता नहीं है, इस सबका मतलब मैं आपको समझा नहीं सकूँगा। केवल यही विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी भावी पत्नी घर में आते ही कुमार को ज़हर नहीं दे देंगी। और न तो चाबुक मार कर बाहर निकाल देंगी। क्योंकि ऐसा करना सभ्यजनोचित आचरण नहीं होगा इसलिए उस ओर से आप निश्चिन्त रहें।'।

अनुराधा ने कहा—'उनकी बात छोड़िये परन्तु आप खुद भी कुमार का ध्यान रखेंगे, यह वचन दीजिए ? वस यही मैं प्रार्थना करती हूँ।'।

विजय ने कहा—'वचनबद्ध होने की इच्छा होती है, परन्तु मेरा स्वभाव और अभ्यास और प्रकार का है। बीच-बीच में कुमार की देख-रेख कक्षा

रहूंगा, लेकिन जितना आप चाहती हैं, उतना मुझसे नहीं होगा।.....अब मैं खा चुका, अभी जाता हूँ। जाने की तैयारी करूँ।'

वह उठा। बाहर जाते जाते कहता गया—'यह रहा कुमार आपके पास। जब आप यहाँ से जाने लगे, तो विनोद को कहियेगा कि वह इसे कलकत्ता पहुँचा देगा। आवश्यकता प्रतीत हो तो सन्तोष को भी साथ कर दीजियेगा। आते दिन जो बर्ताव किया ठीक वैसा ही स्वभाव मेरा नहीं है। यह बात एक बार और जोर देकर कहना चाहता हूँ। मेरे घर में कुमार की अपेक्षा सन्तोष का अधिक अनादर नहीं होगा।'

मकान के सामने घोड़ागाड़ी खड़ी थी। सामान लद चुका था। विजय जब उस पर चढ़ने लगा तो कुमार बोला—'बाबा मौसी बुलाती हैं।'

मुख्य द्वार के पास खड़ी होकर अनुराधा ने कहा—'प्रणाम करूँगी, इसलिए आपको बुलवाया है। फिर कब प्रणाम करने का मौका मिलेगा, नहीं जानती। इतना कह कर गले में उसने आँचल डाला और दूर से प्रणाम किया। उठ कर खड़ी हुई और कुमार को खींच कर अपने से सटा लिया, फिर बोली—'माँ को कहियेगा कि कुमार की कोई चिन्ता न करें। जितने दिन यह मेरे पास रहेगा, उपेक्षा नहीं होगी।'

विजय हँस कर बोला—'विश्वास करना कठिन है।'

'—किसके लिए, आपके लिए कठिन है'—वह भी हँसने लगी तो दोनों की आँखें चार हुईं। विजय ने साफ देखा कि उसकी आँखें सजल थीं। मुँह नीचे करके वह बोली—कुमार को ले जाकर ज्यादा कष्ट नहीं दीजियेगा। फिर नहीं कह सकूँगी, इसलिए बार बार कहती हूँ। आप लोगों के परिवार की बात ध्यान में आने पर इसे वहाँ मेजने की मेरी इच्छा नहीं होती।'

'न सही।'

उत्तर में अनुराधा ने सिर्फ लम्बी साँस ली।

विजय बोला—'जाने के पहले आपको अपने वचन की याद एक बार और दिलाये जाता हूँ। आपने कहा है, ज़रूरत पड़ने पर मुझे चिट्ठी लिखेंगी।'

‘—मुझे याद है। समझती हूँ, गांगुलि महाशय के पास एक भिखारिन की तरह ही माँगना होगा। वहाँ मान-अपमान का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा। किन्तु आपके साथ माँगते वक्त वह बात नहीं। जब कभी जो कुछ चाहूँगी, स्वतंत्रतापूर्वक ही चाहूँगी।’

‘—लेकिन याद रखना’—विजय जाने को तैयार हुआ कि उसने कहा—
‘तो आप भी एक वचन दिये जाइये ? जरूरत पड़ने पर मुझे सूचित करेंगे।’

‘—मुझे सूचित करने का क्या अवसर आयेगा अनुराधा।’

‘—सो मैं नहीं जानती हूँ। मेरे पास है कुछ नहीं, महा अकिंचन हूँ। फिर भी मौका पड़ने पर जी-जान लगा कर सेवा तो कर ही सकूँगी।’

‘—वे लोग आपको किसी की सेवा करने देंगे ?’

‘—मुझे कोई नहीं रोक सकता।’

(७)

माँ ने आतंकपूर्ण स्वर में कहा—‘अरे कुमार को कहाँ छोड़ आया है ? जिसके साथ दुश्मनी उसी के पास।’

विजय बोला—‘जिसके साथ भगड़ा है, वह तो जाकर पाताल में छिप गया है माँ। कौन मर्द है जो उसको खोज निकाले। तुम्हारा पोता अपनी मौसी के पास रह गया। दो-चार दिन के बाद आ जायगा।’

‘यह मौसी कैसे उसको मिली ?’

‘भगवान की इस दुनियाँ में कौन कहाँ से आ धमकेगा यह क्या किसी को पता है। जो तुम्हारी रकम लेकर गायब हो गया है, यह उसी गगन चटर्जी की छोटी बहन है। मकान से इसी को भगाने की नीयत थी, इसी से लठैतों को लेकर वहाँ पहुँचा था। वह एक युद्ध-यात्रा जैसी ही थी। किन्तु तुम्हारे वौत्र ने ही सारा मामला उलट दिया। इस तरह कुमार उसकी आँचल से चिपक गया। कि अकेली उसको भगाना असम्भव हो गया।’

विजय की माँ ने परिस्थिति का अन्दाजा लगा कर पूँछा—‘कुमार ने क्या उसके साथ आत्मीयता स्थापित कर ली है। मालूम पड़ता है लड़की बहुत वत्सल प्रकृति की है। इस बच्चे को स्नेह तो कभी मिला ही नहीं।’ वृद्धा को अपनी अस्वस्थता का स्मरण करके खेद हुआ।

विजय ने कहा—‘मैं तो मकान के बाहरी हिस्से में रहता था। अन्दर कौन किसके साथ कितनी वत्सलता का व्यवहार करता है, सो क्या जानूँ लेकिन आते समय देखा, कुमार अपनी मौसी को छोड़ कर, आने के लिए बिल्कुल राज़ी नहीं हो रहा है।’

माँ को तब भी तसल्ली नहीं हुई। वह बोली—‘कि वह देहात की लड़की ठहरी, उसके पास कुमार को छोड़ आना उचित नहीं हुआ।’

विजय ने जवाब दिया—‘तुम खुद देहात की हो; फिर भी देहात के प्रति तुम्हारा ऐसा अभियोग! आखिर मैं समझता हूँ, इन शहरू छोकड़ियों पर तुम्हारा विश्वास आकर जम गया है?’

‘शहर की यह लड़कियाँ। इनको सौ बार प्रणाम है, परमात्मा बचावे इनसे’—माँ ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार की मुद्रा में कहा।

विजय हँसने लगा। माँ ने कहा—‘क्यों हँसता है रे! अपने दिल का दर्द मैं ही जानती हूँ।’ वृद्धा की आँखों में आँसू छलछला आये, भग्न-स्वर में उन्होंने कहा—‘हमारे ज़माने की देहात अब कहाँ पाओगे विजय, युग ही बदल गया है।’

विजय ने नम्रता से कहा—‘युग लाख बदल गया है, फिर भी जब तक तुम लोग जीती हो, तुम लोगों के ही पुण्य प्रताप से अभी भी देहात में बहुत कुछ बचा हुआ है। यकायक सब गायब नहीं हो गया है, इसी बात का एक झलक इस बार देखने को मिली। वह तुम्हें नहीं दिखला सका, खेद है तो यही।’

विजय आफिस चला गया। इसी आफिस के कामों ने उसे देहात में रहने नहीं दिया।—

विजय सायंकाल दफ्तर से लौट रहा था, तो ख्याल में आया चलो भाभी से मिलते चलें। अन्दर जाने पर देखता क्या है कि युद्ध-काण्ड मचा हुआ है। शृंगार की सामग्रियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। दादा (बड़े भाई) आरामकुर्सी के हथबड़ पर बैठे जोर से चिल्ला रहे हैं—‘नहीं नहीं, कभी नहीं। जाना हो तो अकेली आओ। इस तरह की रिश्तेदारी में.....।’

अकस्मात् विजय को देख कर प्रभा रो पड़ी—‘छोटे बाबू ! वे लोग सितांशु के साथ अनिता की शादी तै कर रहे हैं, तो इसमें मेरा क्या कसूर। आज तिलक पड़ेगा, वह कहते हैं कि नहीं जाऊँगा। इसका मतलब यह हुआ कि मुझे भी नहीं जाने देंगे।’

दादा बरस पड़े—‘तुम नहीं जानती थी, यह कहना चाहती हो ! हमारे साथ इतने दिनों तक आँखमिचौनी खेलने की क्या जरूरत थी ?’

बातचीत का प्रसंग यकायक विजय की समझ में नहीं आया। पहले तो वह हतप्रभ जैसा खड़ा रहा, फिर समझते देर न लगी। वह बोला—‘क्या हुआ है क्या अनिता के साथ सितांशु घोष की शादी पक्की हो गई है। मुझे दूध की मक्खन की भाँति उन लोगों ने निकाल कर अलग रख दिया है !’

दादा ने गम्भीर हुंकार किया—‘और आप कहती हैं कि मुझे कुछ पता ही नहीं है।’

प्रभा फिर रो पड़ी—‘मैं क्या कर सकती हूँ, छोटे बाबू, भाई मौजूद हैं, माँ मौजूद हैं, लड़की खुद सयानी है, वह स्वयं यदि बात को तोड़ दे, तो इसमें मेरा क्या कसूर।’

दादा ने कहा—‘कसूर यही तुम्हारे मायके वाले ढीठ और दगाबाज़ हैं। बातचीत चला रहे थे इस ओर और डोरी लगा रखी थी उस ओर। अब मुंह पर रुमाल दे देकर सब हँसेंगे, मैं उनके सामने शरम के मारे मुंह नहीं दिखा सकूँगा।’

प्रभा उसी प्रकार गीली आवाज़ में बोली—‘इस तरह की बात क्या और जगह नहीं होती। शरम के मारे शूतुरमुर्ग बनने का मौका तुम्हें नहीं आयेगा।’

‘—हमारे ससुर के खान्दान के लोग सब के सब दगाबाज निकले यही तो लोग कहेंगे । और इस षड़यंत्र में कुछ तुम्हारा भी भाग समझा ही जायगा ।’

बड़े भाई की तरफ देख कर विजय हँसने लगा, फिर प्रभा के पैर छूता हुआ बोला—‘दादा जितना ही चिल्लाएँ मुझे तो इसमें कुछ खास राग-द्वेष नहीं हुआ है । और सच पूछो तो, यदि इसमें तुम्हारा भी कुछ हाथ हो, मैं सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा । फिर वह बड़े भाई की ओर मुखातिब होकर बोला—‘दादा तुम नाटक ही गुस्सा कर रहे हो, शादी-व्याह में बातें बनती-बिगड़ती रहती ही हैं, यह कोई घरौंदे का खेल तो है नहीं, सितांशु विलायत से आई० सी० यस० होकर लौटा है, एक बड़ा अपसर बनेगा । अनिता भी देखने में खूबसूरत है, और बी० ए० भी पास किया है । और, एक मैं हूँ, यहाँ भी कोई डिगरा नहीं पा सका, विलायत में भी सात आठ साल मानों सड़क पर रोड़ा ही कूटता रहा । लकड़ी की अपनी दूकान है, गुजारा चल जाता है, न कोई बड़ा अपसर हूँ, न कोई बड़ा खिताब हाँ है, ऐसा स्थिति में अनिता ने जो कुछ किया, वह बिल्कुल ठीक किया; इतनी सी बात पर तुम रंज क्यों होते हो ?’

दादा ने फिर गरजते हुए कहा—‘ठीक किया है, खाक किया है । तेरा मतलब यही है न कि इससे तुम्हें जरा भी तकलीफ नहीं पहुँची है ।’

विजय नम्र होकर बोला—‘दादा तुम बड़े हो, तुम्हारे सामने झूठ नहीं कहूँगा—तुम्हारे पैर छू कर कहता हूँ कि इसका मुझे ज़रा भी दुख नहीं है । उल्टे मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि किसी के अज्ञात पुण्य से मैं डूबते-डूबते बच गया ।.....भाभी चलो मैं तुम्हें पहुँचा आता हूँ । दादा की मर्जी, वह घर बैठे, लेकिन चलो हम आज तुम्हारी बहन के इस मङ्गल मुहूर्त में पेट भर कर खा आएँ ।’

प्रभा ने विजय की ओर देखते हुए कहा—‘क्या तुम मेरा मखौल उड़ा रहे हो, छोटे बाबू !’

‘नहीं भाभी, तुम्हारा भला मैं मखौल उड़ाऊँगा ! मैं तो इसे आशीर्वाद समझता हूँ । यह तुम्हारा बरदान है, भाग्य मानो इस बार मुँह उसे उठा कर

चूमना चाहता है, लेकिन अब देर न करो, कपड़े पहनो, मैं भी जाकर दफ़्तर का पोशाक बदल आऊँ ।’ विजय जाने लगा, तो भाई ने कहा—बिना निमंत्रण के तेरा वहाँ जाना अच्छा नहीं ।’

विजय ठिठक कर खड़ा हो गया—‘सो तो ठीक है, वे लोग शर्मिन्दा होंगे, लेकिन बिना बुलाए भी कहीं चले जाने में आज मुझे लाज नहीं । इसी से मन करता है, वहाँ जाकर अनिता से कहूँ—तुमने मुझे ठगा नहीं है, तुम पर मुझे रत्ती भर भी रोप नहीं, न जलन है । भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि तुम सुखी रहो ।.....दादा मैं हाथ जोड़ता हूँ, गुस्सा मत करो, भाभी को लिवाये जाओ । कम से कम मेरी ओर से तुम लोग अनिता को आशीर्वाद दे जाओ ।’

भाई और भाभी दोनों ही किंकर्षव्य विमूढ़ होकर उसकी ओर देख रहे थे । दोनों को लगा कि सचमुच विजय के मुँह पर प्रतिक्रिया की कोई भी निशानी नहीं है । क्रोध और अभिमान की ज़रा सी भी छुआ उसके कंठ-स्वर पर नहीं पड़ी है । सचमुच ही मानो किसी बड़ी मुसीबत में फँसते फँसते वह बच गया है । बहन के पास यह निर्मल मुखमुद्रा देखने को नहीं मिलेगी । अपमान से आहत होकर प्रभा का अन्तःकरण धू धू करके जलने लगा । वह न जाने क्या कहना चाहती थी, परन्तु उसका कंठ अवरुद्ध था । विजय ने कहा—‘भाभो सब बातें कहने का अवसर अभी भी मेरे लिए नहीं आया है, कभी आयेगा कि नहीं, सो भी नहीं जानता हूँ । यदि किसी दिन ऐसा अवसर आया, तो उस दिन तुम अवश्य कहोगी, छोटे बाबू ! तुम बड़े खुशनसीब हो, तुमको आशीर्वाद देती हूँ ।’



सती

(१)

हरीश पावना शहर का एक प्रतिष्ठित वकील है। सिर्फ वकीलों में ही नहीं, आदमियों में भी उनका नाम आदर से लिया जाता है। सार्वजनिक सेवा का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसके साथ उसका थोड़ा बहुत सम्बन्ध न हो। कोई भी काम होता है, लोगों को उसकी जरूरत पड़ती है। सवेरे दुर्नीति दमन सभा की कार्यकारिणी का एक विशेष अधिवेशन था। वहाँ से घर को लौटते हरीश को जरा देर हो गई है। अभी जल्दी जल्दी में खाकर वह अदालत पहुँचना चाहता है। विधवा उमा उसकी छोटी बहन थी। वह पास में बैठों बैठी निरीक्षण कर रही थी, कि समयाभाव के कारण खाने में कोई त्रुटि न रह जाय।

स्त्री का नाम था निर्मला। आहिस्ते से वह अन्दर आई, पास ही बैठ कर उसने कहा—‘कल के अखबार में पढ़ा है, हमारी लावण्य प्रभा यहाँ के वालिका विद्यालयों की निरीक्षक बन कर आ रही हैं।’

बात साधारण है, परन्तु इसके पीछे कुछ गम्भीर घटना होगी।

उमा ने चकित होकर कहा—‘सच ? लेकिन भाभी यह नाम तो औरों का भी हो सकता है।’

निर्मला ने कहा—‘हो सकता है। इसी से तो उनको पूँछ रही हूँ।’ हरीश ने मुँह उठा कर नर्मी से कहा—‘मुझे क्या पता है। सरकार क्या मेरे साथ सलाह-मशविरा करके ही लोगों को बहाल करती है।’

स्त्री ने स्निग्ध स्वर से उत्तर दिया—‘नाराज़ क्यों होते हो ऐसी कोई बात तो मैंने कही नहीं । तुम्हारे प्रयत्न से यदि किसी का उपकार हो जाय, तो खुशी की ही बात है ।’ इतना कह कर फिर वह चली गई ।

उमा आकुल हो उठी—कसम देकर कहा—‘उठना नहीं भैया, उठना नहीं ।’

हरीश बिजली की फुर्ती से आसन छोड़ कर उठ खड़ा हुआ—‘नहीं, शान्तिपूर्वक दो कौर भी भात खाऊँगा, सो नहीं । ओह ! बिना आत्म-इत्या किये ...’ इतना कहते कहते वह बाहर चला गया । जाते जाते स्त्री का मृदु-मधुर कंठस्वर उसके कानों में पड़ा—‘तुम्हें क्या पड़ा है आत्म-इत्या करने का । जो होगा सो दुनियाँ एक दिन देखेगी ।’

यहाँ हरीश के सम्बन्ध में पहिले की दो-एक बात जान लेनी चाहिए । अभी उसकी उमर चालीस के करीब हो गई है, किन्तु जब उमर कम थी, तो ज्ञानजीवन की उसकी एक घटना है । उसके पिता राममोहन उस समय बरीशाल में सब-जज थे । हरीश एम० ए० की तैयारी कर रहा था । एक बार वह कलकत्ता से बरीशाल आया । पड़ोस में रहते थे हरकुमार मजूमदार । स्कूलों के इन्स्पेक्टर थे । व्यक्ति बड़े सज्जन थे । अहंकार छू नहीं गया था, पांडित्य उनका अगाध था । सरकारी काम काज से जब उन्हें फुरसत मिलती, और शहर में होते, तो सब-जज साहब की बैठक में जरूर बैठते । और भी दूसरे आदमी आते थे । गंजी खोपड़ी के मुन्सिफ, छँटी दाढ़ी वाले डिपटी स्थूलकाय सरकारी वकील और शहर के अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति भी शाम के वक्त सब-जज साहब के यहाँ जरूर आते । इसका कारण था सब-जज साहब स्वयं निष्ठावान हिन्दू थे, इसी से बातें वहाँ अधिकतर धार्मिक ही हुआ करतीं । जैसा कि सब जगह होता है, वैसे यहाँ भी आध्यात्मिकता की शास्त्रीय आलोचना का अन्त मोठी झड़क का रूप धारण करता । कुछ दिन इसी प्रकार की झड़क जब हो रही थी, तो बाँस की पतली छड़ी लिए हुए मजूमदार महाशय बैठक-खाना में आये । इन वाद-विवादों में वह कभी भाग नहीं लेते । स्वयं वह ब्रह्म-

समाजी थे और प्रकृति भी बड़बड़ाने की नहीं थी। इसलिए चुपचाप सुनना ही उन्हें अधिक प्रिय था। जबर्दस्ती अपनी राय प्रकट करने का रोग उनमें नहीं था। आज लेकिन दूसरी ही बात हो गई, बैठक में आते ही गंजी चाँद वाले मुन्सिफ साहब उन्हीं को मध्यस्थ मान बैठे। क्योंकि इस बार जब छुट्टी में मुन्सिफ कलकत्ता गये थे, तो कहीं से इस व्यक्ति की दार्शनिक अभिज्ञता के सम्बन्ध में कुछ सुन आये थे। हरकुमार मुस्करा कर सहमत हो गये। कुछ ही देर में यह पता चला कि शास्त्रीय वचनों के अनुवादों को ही सहारा बना कर कोई इनके साथ तर्क नहीं कर सकता। इनके साथ बातें करने के लिए मौलिक अभिज्ञताओं की आवश्यकता है। सभी को खुशी हुई, केवल सब-जज साहब उस उल्लास में शामिल नहीं हो सके। उनकी धारणा थी कि जिस व्यक्ति ने जाति दे दी, उसकी शास्त्रीय अभिज्ञता का कोई मूल्य नहीं। उन्होंने यह कहा भी। सभी के उठ जाने पर उन्होंने अपने प्रिय मित्र सरकारी वकील को आँख से इशारा किया और मुस्कराते हुए कहा—‘सुना आपने भूत के मुँह में राम का नाम!’ सरकारी वकील अनुमोदन नहीं कर सका। बोला—‘जो हो! लेकिन जानता है खूब। सारा शास्त्र मानों इसको कंठस्थ है। आगे मास्टर था न?’

सब-जज को प्रसन्नता नहीं हुई। बोले—‘खाक में मिले ऐसी जानकारी। यही लोग ज्ञानपापी कहलाते हैं। उनको छुटकारा कहाँ!’

हरीश उस दिन चुपचाप एक कोने में बैठा था, कम बोलने वाले इस व्यक्ति का ज्ञान और विद्वत्ता देख कर वह मुग्ध रह गया। फिर पिता का चाहे जो भी विचार हो, किन्तु पुत्र ने निकटवर्त्ती परीक्षा-नदी पार करने के लिए उसी व्यक्ति का सहारा लेना निश्चित किया। मदद करनी होगी, हरकुमार राजी हो गये। यही उनकी कन्या लाक्षणिक प्रभा के साथ हरीश का प्रथम परिचय हुआ। वह आई० ए० की तैयारी कर रही थी। कलकत्ता का हल्ला-गुल्ला छोड़ कर पिता के पास आई थी। उस दिन से हरीश ने मजूमदार के यहाँ रोज आना जाना शुरू किया। पठ्य पुस्तकों के जटिल अंशों का अर्थ इन्स्पेक्टर साहब से पूँछ लेता। साथ ही एक और जटिल समस्या ऐसी थी, जिसका समाधान उसे वहाँ हुआ, परन्तु अभी उस बात की चर्चा नहीं करनी

चाहिए। आहिस्ते आहिस्ते परीक्षा का दिन नज़दीक आया और हरीश कलकत्ता चला गया। परीक्षा दी और अच्छी तरह पास हुआ।

कुछ दिनों बाद जब वे मिले, तो हरीश ने सहानुभूति में अपना उतरा हुआ चेहरा लेकर पूछा—‘आप इम्तहान में रह क्यों गईं?’

लावण्य ने कहा—‘क्या यह भी मुझसे नहीं होगा, क्या मैं इतनी अयोग्य हूँ।’

हरीश हँस पड़ा—‘जो होना था सो हुआ, इस बार लेकिन अच्छी तरह मेहनत कीजियेगा।’

लावण्य ने बिना किसी भिन्नक के कहा—‘अच्छी तरह मेहनत करने पर भी मैं फेल हो जाऊँगी। वह मुझसे नहीं होगा।’

हरीश चकित रह गया—‘होगा क्यों नहीं।’

लावण्य ने कहा—‘क्यों’ ‘क्या?’ यूँ ही, इतना कह कर अपने मुक्त-हास्य को ओठों से दबाती हुई वह झटक कर चली गई।

धीरे धीरे यह बात हरीश के माँ के कानों में पहुँची। उस दिन सवेरे राममोहन बाबू किसी मुकदमे पर अपना फैसला लिख रहे थे। जो बदनसीब हार गया है, उसके बचाव का कोई भी कूल किनारा न रह जाय, इस विचार से सब-जज साहब शब्दों को चुन चुन कर मसविदा तैयार कर रहे थे। इसी बीच पत्नी के मुँह से अपने लड़के की लीला सुन कर उनकी देह में मानों आग लग गई। हरीश ने किता मनुष्य की हत्या कर दी होती, तो भी इतना शेष उन्हें नहीं होता। दोनों आँखें उनकी लाल हो गईं। ज़ोम के मारे उनसे कुछ बाला नहीं गया, ओठ खुले के खुले रह गए।

सब-जज साहब जब दीनारपुर में रहते थे, तो एक पुराने वकील के साथ उनकी अत्यन्त घनिष्ठता हो गई थी। गीता का मर्म और पेन्शन पाने के बाद काशीवास की बात यह दोनों ऐसे विषय थे जिन पर दोनों में बातलाप हुआ करता। एक दिन छुट्टी के मौके पर दीनारपुर जाकर उक्त वकील की छोटी लड़की निर्मला को आँखों से देखा, और शादी की बात पक्की करते आए।

लड़की देखने में सुन्दर है। गृहस्वामिनी ने अनेक बार स्वयम् उसे देखा है, फिर भी पति की बात सुन कर वह स्तब्ध रह गई। हाथ पर गाल टेकते हुए कहा—‘तुमने यह क्या किया ? यकायक बात पक्की कर आए आजकल के लड़कों की तबीयत... ..’

गृहपति ने कहा—‘परन्तु मैं तो आजकल का बाप नहीं हूँ। मैं अपने पुराने नियम के अनुसार ही लड़के को आदमी बना सकता हूँ। हरीश को अगर पसंद न हो तो कहो कि कोई और प्रबन्ध कर लो।’

गृहिणी गृहपति के स्वभाव से भलीभाँति परिचित थीं, वह चुप कर गईं।

गृहपति ने फिर कहा—‘लड़की परकटी परी भले न हो लेकिन अच्छे घर की कन्या है। वह यदि अपनी माँ का सतीत्व और बाप की भारतीयता, शिष्टाचार लेकर, हमारे घर में आए तो हरीश को इसे भाग्य ही समझना चाहिए।’

यह समाचार गुप्त नहीं रह सकता। हरीश ने भी सुना। पहिले तो उसके जी में आया, भाग कर कलकत्ता चला जाय, और न कुछ ट्यूशन ही सही और न कुछ कमाये, गुजारा तो हो ही जायगा। पीछे उसने सोचा, संन्यासी हो जाना चाहिए। अन्त में पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता ही परमं तपः यह पद याद आया और उसकी चित्तवृत्ति स्थिर हो गई।

लड़की का बाप खूब आडंबर पूर्वक दूल्हे को देखने आया, और आशीर्वाद देने की विधि भी साथ ही निपटाता गया। एक दिन शहर के बहुत से गण्यमान व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था। हरकुमार बिना आमंत्रित हुए ही उस अवसर पर आए थे। उपस्थित व्यक्तियों के सामने रायबहादुर ने अपने भावी समधी मैत्र महाशय की धार्मिक निष्ठा पर प्रकाश डाला और अंग्रेजी शिक्षा के सैकड़ों दोष गिनाकर अपनी यह राय प्रकट की कि स्वयम् उनको हजार रुपए का जो मासिक वेतन मिल रहा है, यह छोड़ कर अंग्रेजी में और कोई सामर्थ्य नहीं है। आजकल जमाना बदल गया है, लड़कों को बिना अंग्रेजी पढ़ाए काम नहीं चलता, परन्तु जो मूर्ख अन्तःपुर में स्थित

बालिकाओं के मध्य इस म्लेच्छ विद्या और म्लेच्छ सभ्यता खींच लाता है, उसका इहलोक और परलोक दोनों नष्ट समझिए ।

अकेले हरकुमार ही ऐसे थे, जिनको इस प्रवचन का तात्पर्य समझ में नहीं आया । और सभी लोग समझ चुके थे । उस दिन सभा भंग होने से पहिले ही विवाह का शुभ लग्न स्थिर हो गया, और यथासमय कार्य सम्पन्न भी हो गया । लड़की जब पतिग्रह में आने लगी, तो महा सती साध्वी उसकी माता ने बधू जीवन का चरम उद्देश्य उसके कानों में दिया और बोली—बेटी मर्दाँ पर नज़र न रखने से सारा गुड़ गोबर हो जाता है, दुनियाँ में और बात भले भूल जाना, पर यह तथ्य न भूलना ।

स्वयम् उनको भी स्वामी ने बहुत सताया है, गीता की दार्शनिकता को लेकर जब उनकी मादकता बढ़ गई तभी यह सताना कम हुआ । आज भी उनका दृढ़ विश्वास है कि बुड्डा जब तक चिता पर नहीं जायगा, तब तक उनको चैन नहीं मिलेगा ।

निर्मला स्वामी के घर से बरीसाल आई, और आज बीस वर्ष हुए, यही उनका समय कट रहा है, इस लम्बे अरसे में कितनी उलट-फेर हो गई, रायबहादुर मर गए, धर्मात्मा मैत्र महाशय भी स्वर्गवासी हुए, लिखना-पढ़ना खतम करने पर लावण्य प्रभा की शादी दूसरी जगह हो गई । हरीश बाबू जूनियर से सीनियर वकील बन गए । उनकी उमर जवानी पार करके प्रौढ़ावस्था की सीमा में चली आई । परन्तु निर्मला के कान में माँ ने जो मंत्र फूँका था, वह ज्यों का त्यों कायम है । इस जाग्रत मंत्र का प्रभाव इतनी जल्दी परिलक्षित होने लगेगा, कौन जानता था । रायबहादुर स्वयम् उन दिनों जीवित थे । पेन्शन मिल रही थी, अपने पावना वाले मकान में आकर रहने लगे थे, हरीश के एक वकील मित्र थे, उनके पिता के साथ कलकत्ता से एक कीर्त्तन करने वाली आई थी । देखने में सुन्दर, अवस्था भी कम । बहुतों की इच्छा थी, क्रिया-कर्म खतम हो जाने पर एक दिन अच्छी तरह उसका कीर्त्तन सुना जाय । अगले दिन हरीश को भी कीर्त्तन सुनने का निमंत्रण मिला । कीर्त्तन सुनकर घर लौटते वक्त रात ज़रा ~~ज्यादा हो गई~~ ।

निर्मला ऊपर के खुले बरन्डे पर रास्ते की ओर नज़र किए खड़ी थी ।
स्वामी को अन्दर आते देख उसने पूछा—‘कैसा गाती है ?’

‘अच्छी गाती है’—हरीश ने खुश होकर कहा ।

‘देखने में कैसी है ?’

‘अच्छा ही समझो ।’

निर्मला ने कहा—‘अगर ऐसी बात थी तो रात वहीं बिता लेते ।’

हरीश निर्मला से इस प्रकार के घृणित मतव्य की आशा नहीं रखता था,
उसे क्रोध हुआ, फिर विस्मय—‘कैसे रात मैं वहाँ बिताता ?’

निर्मला क्रोधमिश्रित स्वर में बोली—‘अच्छी तरह ही... मैं कच्ची छोकड़ी
नहीं हूँ, सब जानती हूँ, मेरी आँखों में धूल भोंकोगे, अच्छा.....’

उमा पास के कमरे से निकल आई और डरती हुई बोली—‘यह तुम
क्या कर रही हो भाभी ? बाबा सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?’

‘—सुन लेंगे तो सुन लेंगे, मैं गुपचुप थोड़े ही कहती हूँ ।’

इस प्रश्न के उत्तर में उमा को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या करे ।
लेकिन पीछे उसके वृद्ध पिता की कहीं नींद न टूट जाय इस डर से हाथ जाँड़
कर और रोष को संयत करके चुपके से उसने कहा—‘रहने भी दो भाभी ।
इतनी रात गए चिल्लाकर आसमान को शिर पर मत उठाओ ।’ बहूरानी का
कण्ठस्वर इससे मन्द नहीं पड़ा, प्रत्युत तीव्र ही हो गया । वह बोली—‘तुम
क्यों न ऐसा कहोगी ननद रानी ! तुम्हारी तो छाती नहीं जल रहा है ।’
इतना कहते कहते निर्मला रो पड़ी । और शीघ्र गति से अपने कमरे के अन्दर
चली गई और सिटकनी चढ़ा कर किवाड़ों को खट से बन्द कर दिया ।

हरीश कठपुतली की तरह चुपचाप नीचे चला आया, और बाकी रात
उसी बेंच पर सो कर काट दी जिस पर दिन को मुक्किल लोग बैठा करते
हैं । इसके बाद दस-बारह दिन तक दोनों में बातचीत नहीं हुई ।

परन्तु अब हरीश भी शाम के बाद बाहर नहीं जाता अगर जाता भी तो उसकी शक्ति चितवृत्ति को देख कर लोगों को हँसी आती। मित्र कहते—हरीश बूढ़ा होता जाता है तो बीमारी भी उसकी बढ़ती जाती है।

हरीश ऐसे अवसरों पर चुप रह जाता, ज्यादा कुरेदे जाने पर कुछ बोल उठता—इस नफरत से यदि तुम लोग मेरा पाँछा छोड़ सको तो तुम्हारा भी भला होगा और हमारा भी। मित्र लोग कहते—फिजूल है, फिजूल, हरीश के सामने शरम खुद शरमिन्दा हो जायगी।

(३)

उस दफे वसंत रोग के आक्रमण से लोग खूब मर रहे थे, हरीश भी बीमारी की चपेट में आ गया। कविराज आए। वैद्यो ने आकर परीक्षा की तो कहा—‘खतरा है, बचना मुश्किल है।’

रायचहादुर का देहान्त हो चुका था। हरीश को बूढ़ो माँ बहुत हो व्याकुल हो गईं, निर्मला घर से बाहर निकली और बोली—‘यदि मैं सती माता की सती बेटी हूँ, तो मेरे सीमन्त का सिन्दूर कौन पोंछ सकता है। तुम लोग उनकी परिचर्या करो मैं चली।’ वह शीतला के मन्दिर में जाकर एक प्रकार की सत्याग्रह शुरू कर बैठी, उसने कहा—उनके प्राण बचेंगे तभी मैं घर लौटूँगी अन्यथा यहीं से उनके मृतक देह के साथ जाऊँगी।

सात दिन बीत गए, शीतला का चरणाभूत छोड़ कर और कुछ उसने नहीं लिया। लोग कहते कहते हैरान हो गए।

वैद्य जी ने आकर कहा—‘बेटी, तुम्हारे स्वामी नोरोग हो गए, चलो घर।’

दर्शनार्थियों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। गाँव की स्त्रियों ने उसके पैरों की धूल अपने शिर पर ली। सती के माथे पर सौभाग्यवतियों ने खूब गाढ़ा सिन्दूर पोता। उनका कहना था—यह मानवी नहीं, साक्षात् देवी है। बूढ़ों

ने कहा—सावित्री की कहानी भूठी है, इस कलिकाल में भी धर्म का अभाव नहीं हो गया है। यह यम के मुँह से अपने स्वामी को लौटा ले आई है।

मित्रलोग लाइब्रेरी में इकट्ठे होकर कानाफूसी करने लगे—औरत का गुलाम आदमी यूँ ही नहीं होता। शादी तो हमने भी की है, परन्तु ऐसी स्त्री कहाँ से लाएँ। इसीलिए तो हरीश शाम के बाद घर से बाहर नहीं निकलता।

बीरेन्द्र बाबू वकीलों में भक्त प्रवृत्ति के समझे जाते हैं पिछले साल लुट्टी के अवसर पर वह काशी गए थे। विसी संन्यासी से मंत्र ले आए हैं। उन्होंने मेख पर कस कर मुक्का मारते हुए कहा—‘भाई मैं पहिले ही जानता था. हरीश मर ही नहीं सकता। सती वाली बात क्या इतनी साधारण है, वह घर से बोल कर निकली थी कि अगर सती माँ की सती बेटी होऊँ तो ओह ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं।’

तारिणी चटर्जी की उम्र काफी हो गई है। खूब अफीम खाता है। एक तरफ बैठे बैठे तन्मय होकर वह तम्बाकू पी रहा था, हुक्का नौकर को थमाते हुए उसने लम्बी सांस ली—‘शास्त्र के अनुसार सहधर्मिणी पाना कठिन है। मुझे देखो!न सात लड़कियाँ हैं, व्याहते व्याहते नाकों दम आ गया।’

कई दिनों के बाद स्वस्थ होकर जब हरीश अदालत में आया, तो असंख्य लोगों ने उसे बधाई दी।

ब्रजेन्द्र बाबू ने खेद प्रकट करते हुए कहा—‘भाई हरीश ! पत्नी भक्त कह कर तुम्हें हमने बहुत शरमिन्दा किया है, माफ करना, लाख नहीं, कोटि कोटि आदमियों में से तुम जैसा भाग्यवान ढूँढने से भी नहीं मिलेगा, धन्य हो तुम।’

भक्त बीरेन्द्र बाबू ने कहा—‘सीता-सावित्री की बात छोड़ दो, परन्तु लीलावती, गार्गी आदि हमारे ही देश में पैदा हुई थीं। भाई, स्वराज-वराज सब भूठ है, किसी से भी उद्धार नहीं होगा, जब तक लड़कियाँ उसी प्रकार की तैयार न की जायँगी, तब तक देश की दशा नहीं सुधरेगी। मेरा तो जी चाहता

है कि पावना में एक “आदर्श नारी-शिक्षा समिति” बनानी चाहिए। और आदर्श महिलाओं की इस संस्था की अध्यक्ष जो होगी, उनका नाम हम सभी जानते हैं।’

बूढ़े तारिणी चटर्जी ने कहा—‘उसी के साथ साथ “पण-प्रथा निवारणी समिति” का भी निर्माण होना चाहिए। देश मिट्टी में मिल गया महाशय।’

ब्रजेन्द्र ने कहा—‘हरीश तुम तो बचपन से ही लिखना जानते हो। इस रोग से छुटकारा पाने में जो अनुभूतियाँ तुम्हें प्राप्त हुई हैं, उन पर एक लेख लिखो और उसे “आनन्द बाजार” पत्रिका में छपवा दो।’

हरीश ने किसी की बात का जवाब नहीं दिया। कृतज्ञता के मारे उसकी आँखें डबडबा आईं।

(४)

जमींदार गोसाईं चरण की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों में और एक विधवा पुत्रवधू में ज़मीन-जायदाद की बात लेकर मुकदमा लड़ गया था। विधवा की ओर से हरीश थे वकील। जमींदार का अमला कौन किससे मिला है, यह जानना मुश्किल है? इसी से वह विधवा स्वयं ही अपने वकील के घर दो-एक बार गुप्त परामर्श के लिए आई-गई थी। आज सबेरे भी उसको घोड़ा-गाड़ा हरीश के बैठक के सामने आकर खड़ी हुई। हरीश ने आदरपूर्वक उसे ले जाकर अपने बैठक में बैठाया। सलाह-मशविरा का बात किसी तीसरे के कान में न पहुँचे, इसलिए दोनों ही बहुत सावधान होकर बीरे धारे बातें कर रहे थे। जाने क्या उस विधवा ने पूछ दिया कि हरीश को यकायक हँसी आई, और वह उत्तर देना ही चाहता था कि बगल वाले कमरे की तरफ से तीव्र कंठस्वर में सुनाई दिया—‘मैं सब सुन रही हूँ।’

विधवा चौंक कर तिलमिला उठी—लज्जा और सन्देह के मारे हरीश सुन्न हो गया।

उन बेचारों को क्या पता था कि एक जोड़ा कान और एक जोड़ी आँख उनके पीछे हाथ धोकर पड़ी है। रणचंडी की भाँति निर्मला कमरे का पर्दा ठेलती हुई अन्दर घुस आई। हाथ हिलाती हुई उसने विपैली आवाज़ में कहा—‘फुस फुस करके क्या बातें हो रही थीं, मुझे तुम धोखा दोगे ? कहाँ कभी तो तुमने मेरे साथ हँस कर बातें नहीं की, आज कौन ऐसा रसीला प्रसंग आ गया था !’

शिकायत बिल्कुल झूठी नहीं थी।

विधवा डर गई थी, उसने पूछा—‘हरीश बाबू यह सब क्या है ?’

हरीश कुछ देर चुप रह कर फिर बोला—‘पगली कहीं की !’

निर्मला चिंघाड़ उठी—‘मैं पगली हूँ, अच्छा वही सही, लेकिन किसने मुझे पागल बनाया है.. ..।’ वह हड़ुआ कर रोने लगी और घुटने टेक कर उस विधवा के पास बैठी, बार बार वहीं सर पटकने लगी। नौकरानी काम छोड़ कर दौड़ी आई, एक वकील बन्धु किसी काम से मिलने आये थे, वह भी द्वार के पास आकर खड़े हो गये। और उन सबके सामने निर्मला सर पटक-पटक कर कड़ रही थी मैं सब जानती हूँ, अच्छा रहो तुम्हीं दोनों इस घर में, मैं चली। अगर सती माँ की सती लड़की होऊँ अगर जान बूझकर मैंने पर पुरुष की चिन्तना की हो, अगर—

इधर विधवा खुद भी रोने लगी—‘यह क्या हुआ हरीश बाबू ! इस तरह मुझे बदनाम क्यों किया जा रहा है।’

हरीश किंकर्तव्यविमूढ़ सा चुप था, वह कुछ नहीं बोला। नीचे शिर किये बैठा रहा। जी में यही बात आ रही थी कि धरती अब भी क्यों नहीं फटती ?

लज्जा ! घृणा और क्रोध के मारे उस दिन हरीश बाहर नहीं निकला। अदालत भी नहीं गया। दुपहर में उमा आई, और अपने शिर की सौगंध देकर कुछ खिला पिला गई। सायंकाल से पहले रसोइया महाराज आये, चौंड़ी की कटोरी में कुछ पानी था, और वह हरीश के पैर के पास रख दी गई। हरीश को जी में आया कि लात मार कर पानी ढलका दे, किन्तु अपने पर

काबू रख कर आज भी उसने और दिनों की भाँति पैर का अँगूठा उसमें डुबा दिया । निर्मला का नियम था कि पति का चरणाभूत लिए बिना वह पानी तक न पियेगी ।

रात को बाहरी कमरे में हरीश अकेला लेटा पड़ा था । वह यही सोच रहा था कि इस बोझिल जीवन का अन्त कब होगा । उसने बार बार ऐसा सोचा है, परन्तु अपनी स्त्री के सतीत्व का नागपाश इतना प्रबल उसे दीखता है कि उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं ।

(५)

दो साल बीत गये । निर्मला ने पूँछताछ करके यह पता लगा लिया है कि अखबार की बात झूठी नहीं, सच है । लावण्य प्रभा सचमुच ही पावना के गर्ल्स स्कूलों की इन्स्पेक्टर बन कर आ रहा है ।

आज हरीश अदालत से जरा सबेरे लौटा था, छोटी बहन से उसने कहा—‘रात की ट्रेन में वह कलकत्ता जायगा कोई ज़रूरी काम है । लौटने में चार-छः दिन लग जायँगे । विस्तरा और सामान नौकर से ठीक करवा रखना ।’

पन्द्रह दिन से पति-पत्नी में बातचीत बन्द थी ।

रेलवे स्टेशन दूर पड़ता है, रात को ष बजे ही मोटर से निकल जाना होगा । शाम के बाद कुछ ज़रूरी कागजात वह हेन्डबैग में रख रहा था कि निर्मला आई, हरीश ने मुँह उठा कर देखा लेकिन रहा चुप ही ।

निर्मला कुछ देर चुप रही और फिर पूछा—‘क्या कलकत्ता जा रहे हो ?’

‘हूँ’—हरीश ने कहा ।

‘क्यों ?’

‘क्यों क्या ! मुवकिल का काम है, हाईकोर्ट जाना है ।’

‘चलो न, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ ।’

‘तुम जाओगी, भला ठहरोगी कहाँ ?’

निर्मला बोली—‘जहाँ तुम ठहरोगे । पेड़ के नीचे भी ठहरने में मुझे लजा नहीं होगी ।’

बात ठीक थी और सती को जैसा कहना चाहिए वैसी ही कही गई थी । लेकिन हरीश के जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो । वह बोला—‘तुमको शरम न हो, मुझको तो है । मैं पेड़ के नीचे नहीं किसी बन्धु के घर ठहरूँगा ।’

निर्मला गम्भीर होकर बोली—‘तब तो ठीक ही है । वहाँ भी बन्धु के घर में बाल-बच्चे होंगे, स्त्री होगी, वहाँ भला मुझको क्या तकलीफ होगी ।’

‘—नहीं, सो नहीं हो सकता है । न चिट्ठी न पत्री न खबर, बिना कहे-सुने तुमको लेकर किसी के यहाँ पहुँच जाना यह मुझसे नहीं होगा ।’

निर्मला ने भौंहें नचा कर कहा—‘हाँ, सो तो तुमसे नहीं ही होगा, मैं साथ रहूँगी तो लावण्य के यहाँ भला कैसे ठहरोगे ?’

हरीश तिलमिला उठा । खौलते हुए तेल की कड़ाही में जैसे किसी ने हरी मिर्ची डाल दी हो । उसका चेहरा तमतमा उठा । हाथ पैर हिलने लगे, चिल्ला कर वह बोला—‘फूहड़ कहीं की, जैसी खुद है, वैसी ही और को समझती है । वह बेचारी विधवा है, मैं उसके यहाँ भला कैसे ठहर सकता हूँ या वही मुझे कैसे बुलायेगी । और दूसरी बात यह है कि वहाँ समय कहाँ मिलेगा ? कलकत्ता जाने पर तो साँस लेने की भी फुर्सत नहीं मिलती है ।’

‘मिलेगी, फुर्सत मिलेगी, क्यों नहीं मिलेगी, ऐसे बन्धु के लिए भला समय का अभाव ।’

निर्मला बाहर चली गई ।

तीन दिन के बाद हरीश कलकत्ता से लौट आया तो स्त्री बोली—‘चार-छः दिन कह गये थे, तीन ही दिन में कैसे आ गये ?’

हरीश ने कहा—‘काम हो गया, चला आया ।’

निर्मला ठहाका मार कर हँसने लगी । फिर पूँछा—‘लावण्य से मुलाकात नहीं हुई ।’

हरीश ने कहा—‘नहीं ।’

निर्मला ने सौजन्य दिखलाने वाली मुखमुद्रा में पूँछा—‘कलकत्ता हो आये और उसकी एक बार खोज-खबर नहीं ली ।’

हरीश ने जवाब दिया—‘समय नहीं मिला ।’

‘इतना नज़दीक पहुँच गये, समय थोड़ा निकाल लेते’—निर्मला बाहर चली गई ।

इस घटना को मास भर हुआ होगा कि एक दिन अदालत जाते समय हरीश ने बहन को पुकार कर कहा—‘आज लौटने में मुझे शायद देरी हो ।’

‘क्यों भैया ?’

उमा पास में ही थीं, आहिस्ते बोलने से भी वह सुन लेती, परन्तु किसी अन्य व्यक्ति को सुनाने के उद्देश्य से स्वर को यथाशक्ति ऊँची करके हरीश ने कहा—‘योगेन बाबू के घर कुछ सलाह-मशविरा करना है. देर होने की सम्भावना है ।’

लौटने में सचमुच देरी हुई । बहार से कम तो क्या हुए होंगे । हरीश मोटर से उतर कर बैठक में घुसा । कपड़ा बदलते बदलते उसने सुना—ऊपर खिड़की से निर्मला ड्राइवर को पूँछ रही है, अब्दुल कहाँ से आ रहा है, योगेन्द्र बाबू के घर से ।

अब्दुल ने कहा—‘नहीं माता जी, स्टेशन से आ रहे हैं ।’

‘स्टेशन ? स्टेशन से क्यों ? गाड़ी से कोई उतरा था ।’

अब्दुल ने कहा—‘कलकत्ता से एक माई जी और एक बच्चा आया है ।’

‘कलकत्ता से ? और, बाबू उसे जाकर डेरा पर पहुँचा आये हैं न ?’

‘हाँ’—अब्दुल मोटर को गैरेज के अन्दर ले गया ।

घर में हरीश स्तब्ध होकर खड़ा रहा । इस प्रकार की बात हो सकती है, यह वह स्वयं जानना था परन्तु नौकर को झूठ बोलने की शिक्षा देना—यह उससे नहीं होगा । रात को सोने के घर में छोटा सा महाभारत ही मच गया ।

दूसरे दिन सबेरे ही लावण्य बच्चा को साथ लिए इस मकान में उपस्थित हुई। हरीश बाहर बैठा था, लावण्य ने कहा—‘आपकी स्त्री के साथ मेरा परिचय नहीं, चलिये कुछ बातें करूंगी।’

हरीश का दिल धकधक करने लगा। उसने कहना चाहा कि ‘अभ’ वह कार्य में व्यस्त होगी लेकिन कह न सका। उसको साथ ले जाकर अपनी स्त्री से परिचय करा दिया।

दस साल का लड़का और लावण्य। निर्मला ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। लड़के को कुछ खाने की चीज दी, और उसकी माँ को आसन बिछा कर उस पर बैठाया—‘मेरा परम सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।’

लावण्य ने जवाब में कहा—‘हरीश बाबू के मुँह से सुना है कि आपने व्रत और उपवास कर करके शरीर को सुखा डाला है। अभी भी दुर्बल दीखती हैं।’

निर्मला मुस्कराती हुई बोली—‘उन्होंने बात बढ़ा कर कही होगी। लेकिन यह कब उन्होंने कहा है।’ हरीश पास में खड़ा था, उसका चेहरा पीका पड़ गया।

लावण्य ने कहा—‘इसी बार कलकत्ते में कहा है। खाने बैठे, तो आपकी ही बात करते रहे, उनके बन्धु कुशल बाबू का जो मकान है, उसी के बगल में मेरा भी है, छत पर से आवाज़ देने पर सुनाई पड़ता है।’

निर्मला ने कहा—‘सुभीता तो खूब है न?’

लावण्य ने हँस कर कहा—‘इतने से ही नहीं, लड़के को भेज कर बुलवा लिया था।’

ज़रा सा रुक कर लावण्य फिर बोली—‘जात-पाँत का भी बहुत टन्टा खड़ा करते हैं। ब्रह्मसमाज वालों का छूआ नहीं खाते, मेरा फूफ़ी तक का छूआ नहीं खाते, सारा सामान मैंने खुद तैयार किया और परोस कर खिलाया।’ फिर वह मुस्कराती हुई हरीश बाबू की तरफ देखने लगी—‘अच्छा

इन सब बातों के समर्थन के लिए आप के पास कोई दलील है ? और मैं स्वयम् क्या ब्रह्मसमाज से अलग हूँ ।’

हरीश का नसबस ढीला पड़ने लगा । वह बात बात में भूटा साबित हो रहा था ; उसके जी में आया कि इतने दिन पर जा कर आज धरती फट रही है, और उसमें उसको जगह मिलेगी । परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि निर्मला शान्तिपूर्वक सुन रही थी । आज उन्माद का कोई भी लक्षण उसमें नहीं था, अथवा संदिग्ध भावनाओं को बिल्कुल सत्य पाकर उसकी चेतना कुंठित तो नहीं हो गई थी ?

हरीश बाहर आकर बैठ गया, स्तब्ध, उदास । सवेरे उसके जी में आया था कि लावण्य को सावधान कर दे, परन्तु अपने अपमान की यह कथा उस शिद्दित और संभ्रान्त महिला के सामने वह कह नहीं सका ।

लावण्य चली गई । निर्मला वायुवेग से घर के अन्दर आई और गरज कर कहा—‘छी: तुम इतना भूठ बोलते हो, भूटा कहीं का ।’

हरीश की आँखें लाल हो गई वह उठकर खड़ा हो गया—‘मेरी खुशी, मैं बोलूंगा सौ बार बोलूंगा ।’

निर्मला क्षण भर स्वामी के मुँह की ओर देखती रही फिर रो पड़ी—‘जितनी मर्जी हो भूठ बोले जाओ, मुझको ठगे जाओ, परन्तु धर्म यदि कोई चीज है, और मैं यदि सती माँ की सती लड़की हूँ, तो तुम्हें भी एक दिन मेरे लिए रोना पड़ेगा’—इतना कह कर वह उसी वायुवेग से चली गई । बातचीत पहिले भी एक प्रकार से वन्द हो थी, अब वह अच्छी तरह वन्द हो गई । मकान के निचले तल्ले में ही सोना-खाना सब चलता है । अदालत जाना-आना, बाहर वाले घर में अकेले बैठना—सब पहिले की तरह । पहिले सायंकाल को कभी कभी वह क्लब की ओर चला जाता था, अब सो भी वन्द कर दिया है, क्योंकि उसी ओर लावण्य का डेरा है । उसकी यह धारणा हो गई थी, कि उसकी प्राणेश्वरी की दो आँखें दस आँखों की शक्ति लेकर दसों दिशा से उसकी गति-विधि देखा करती हैं । विराम नहीं, विश्राम नहीं, चैन नहीं, आराम

नहीं; आशंका और आतंक के चंगुल में रात-दिन उसके कटते हैं। नहाने के बाद आईने में जब वह अपना चेहरा देखता है, तो उसे लगता है कि अपनी महासती के अक्षय प्रेमाग्नि में उसके पाप-पूर्ण देह की रक्तमज्जा और मांस सूख-सूख कर तथा निर्मल होकर शीघ्र गति से किसी उच्चतर परलोक की ओर प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे हैं। उसकी आलमारी में देशी भाषा का एक महाभारत पड़ा था। जब उसका समय काटे नहीं कटता, तो उसी पुस्तक में चुन चुन कर सतियों का उपाख्यान पढ़ा करता। प्रचण्ड था उनका पराक्रम और अद्भुत थी कहानी। स्वामी कितना ही पापी क्यों न हो, केवल स्त्री के सतीत्व की शक्ति से पापमुक्त होकर कल्पकाल पर्यंत परलोक में स्त्री के साथ साथ वह वास करता है। इरीश को पता नहीं, कल्पकाल क्या होता है, परन्तु वह दो-चार वर्ष का छोटा समय नहीं होगा और ऋषि-मुनि की लिखी शास्त्र की वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती यह सब जब उसे याद आता, तो उसकी देह धू धू करके जलने लगती। परलोक की बात को तिलांजलि देकर विस्तरा पर लेटे लेटे वह इस लोक की बातें सोचा करता। परन्तु रास्ता नहीं सूझ रहा था। साहबों की बात होती, तो मामला-मुकदमा खड़ा करके छुटकारा पाया जा सकता था। मुसलमानों की बात होती, तो भी तलाक का रास्ता खुला था। किन्तु निरुपाय, एकपत्नीव्रत प्रतिष्ठित बंगाली—बचने का कोई उपाय नहीं। अंगरेजी शिक्षा के प्रताप से बहुविवाह बन्द हो गया है। परन्तु चन्द्र सूर्य भी जिसका मुँह नहीं देख पाते, बड़े बड़े दुश्मन भी जिसके सतात्व पर सन्देह नहीं कर सकते, स्वामी को छोड़ कर जिसके ज्ञान की कोई परिधि नहीं, निर्मला उसी प्रकार की एक स्त्री है। उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है। निष्कलंक हिन्दू समाज के बीच ऐसा करके कौन माई का लाल है जो मुँह दिखा सकता है? सारा देश उम व्याक्ति पर थूकेगा, अन्त में चाट भी जायगा।

सोचते सोचते उसकी कनपट्टी गरम हो जाती, विस्तरा छोड़ कर वह उठता, आँखों में पानी के छीटे डालता, मुँह धोता, कपार रगड़ता और बाकी रात कुर्सी पर बैठे बैठे काट देता। इस प्रकार एक मास बीत गया, इरीश

अदालत जाने के लिए तैयार हो रहा था, कि नौकरानी ने एक चिट्ठी ला कर दी—जवाब के लिए बाहर एक आदमी खड़ा था ।

लिफाफा खुला हुआ था, ऊपर लावण्य की दस्तखत थी । हरीश ने चिट्ठी लेकर पूछा—‘चिट्ठी मेरी किसने खोली ?’

नौकरानी ने कहा—‘माता जी ने ।’

हरीश ने चिट्ठी पढ़ी, लावण्य ने खेद प्रकट करते हुए लिखा था—उस दिन मेरी तबियत ठीक नहीं थी । आप स्वयम् देख गए थे, लेकिन दुबारा खोज-खबर नहीं ली कि मैं मरी कि बचो हूँ । आप अच्छी तरह जानते हैं कि इस परदेश में आपको छोड़ कर मेरा अपना कोई नहीं है । जो हो, इस बार तो मैं मरी नहीं, बच गई, यह चिट्ठी कोई अभियोग पत्र नहीं है । आज मेरे पुत्र की जन्म-तिथि है, एक बार आकर उसे आशीर्वाद दे जाइए, यही प्रार्थना है ।

पत्र के अन्त में पुनश्च करके लिखा है—रात को आपका भोजन यहीं होगा । गाने-बजाने का भी थोड़ा सा आयोजन है ।

चिट्ठी पढ़ कर शायद वह क्षण भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था । नज़र उठी तो देखा—नौकरानी अपनी हँसी छिपाने के लिए मुँह नीचे कर रही है । तो क्या यह बात नौकर-नौकरानियों के लिए एक तमाशा की वस्तु हो गई है । उसका खून खौलने लगा—क्या इसकी कहीं सीमा नहीं है ? जितना ही सहता जाता हूँ, उतनी ही पीडन मात्रा बढ़ती चली जा रही है :

‘—चिट्ठी कौन लाया है ?’

‘—उनके यहाँ की महरी ।’

हरीश ने कहा—‘उसको बोल दो, मैं अदालत से लौटते हुए वहाँ आऊँगा । फिर वह सीना तान कर वीर भाव से मोटर पर जा बैठा ।

उस रात को घर लौटते हरीश को बहुत देरी हो गई थी । मोटर से उतरते ही उसने देखा कि ऊपर के कमरे की खिड़की खुली हुई है, और निर्मला पाषाणी की तरह खड़ी है ।

डाक्टर लोग अभी अभी जा चुके थे। फेमली डाक्टर बूढ़े शान बाबू जाते जाते कहते गए—‘अफीम सारी निकल गई है, अब कोई खतरा नहीं है, जो होना था हुआ, बहू अब जल्द ही स्वस्थ हो जायगी। सिर्फ दो-एक रोज निगाह रखनी होगी, हरीश ने कहा—‘जी।’ वह गरदन हिलाकर पता नहीं, किस भावना को व्यक्त करना चाहता था।

उस दिन वकालतखाने में बहुत कड़ी आलोचना चल रही थी। वीरेन्द्र बाबू ने कहा—‘हमारे गुरुदेव का कहना है, मनुष्य का विश्वास कभी नहीं करना। अभी उस दिन गोसाईं बाबू की विधवा पुत्रबधू के सम्बन्ध में जिस रहस्य का उदघाटन हुआ, तुम लोगों ने उस पर विश्वास नहीं किया। कहा—हरीश भला ऐसा काम कर सकता है। और अब गुरुदेव की कृपा से मैंने ऐसे बहुत से तथ्यों का पता लगा लिया है, जो स्वप्न में भी तुम लोग नहीं पा सकते।’

ब्रजेन्द्र बोला—‘वह हरीश भी कैसा विचित्र है, ऐसी सती-साध्वी स्त्रा पाकर बाहरी दुनियाँ का मज्जा लूटना चाहता है। बदमाशों के भाग्य में ही ऐसी स्त्रियाँ पड़ती हैं।’

बूढ़े तारिणी चटर्जी ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा—‘बेशक मेरे सिर के बाल तो सफेद हो गए हैं, लेकिन क्या मजाल किसी का कि मेरे आचरण पर उँगली उठाये ! और सात सात लड़कियों का बाप हूँ, व्याहते व्याहते दिवाला निकल गया।’

योगेन्द्र बाबू बोले—‘हमारे गर्ल्स स्कूलों की इन्स्पेक्टर लावण्य प्रभा बहुत ही योग्य है। सरकार से उनकी तरफ़ी के लिए सिफारिश कर देनी चाहिए।’

‘निहायत ज़रूरी है यह बात’—वीरेन्द्र ने कहा।

एक ही दिन में सती-साध्वी निर्मला के स्वामी हरीश की दुश्चरित्रता को लेकर सारा शहर मुखरित हो गया। मित्रों की मेहरवानी से सारी बात उसके कानों तक पहुँची।

उमा आई, उसकी आँखें सजल थी। आँसू पोंछते हुए उसने कहा—
‘दादा तुम दूसरी शादी कर लो।’

‘पगली कहीं की’—हरीश ने जवाब दिया—

उमा ने कहा—‘हमारे देश में तो पुरुष के लिए बहुविवाह विहित ही था।’

‘—उन दिनों हम वर्वर थे।’

उमा ने हठपूर्वक कहा—‘वर्वर क्यों? तुम्हारी वेदना को मुझ से ज्यादा कौन जानता है। सारा जीवन ऐसे ही विफल जाने दोगे।’

हरीश ने कहा—‘बहन, और उपाय ही क्या है? स्त्री का परित्याग करके दूसरी शादी करना पुरुष के लिए विहित है, यह मैं जानता हूँ; परन्तु स्त्रियों के लिए तो वैसी सुविधा नहीं है। तुम्हारी भाभी के लिए भी अगर यह रास्ता खुला रहता, तो मैं तुम्हारी बात मान लेता।’

‘क्या खूब! तुम्हारी यह दलील मैं नहीं समझो गजब की है।’

—उमा रंज होकर चली गई। हरीश चुपचाप एकाकी बैठा रहा। उसके अंधकारपूर्ण हृदयाकाश में बार बार यह बात मुखरित हो उठती थी, कि उपाय नहीं! रास्ता नहीं, इस आनन्दहीन जीवन में केवल दुख ही सत्य है।

उसके बैठकखाने में उस समय संध्या की घननील छाया और भी गाढ़ी होती आ रही थी। सहसा उसके कान में कीत्तेन की ध्वनि आई? बगल वाले मकान के दरवाजे पर खड़े होकर वैष्णव भिखारियों का दल गीत गा रहा था। दूती का विलाप चल रहा था। कथाप्रसंग यह था कि राधा की दूती मथुरा में आकर कुंवर कन्हैया जी के सामने उनकी ही हृदय-हीनता का बखान कर रही है। हरीश को पता नहीं कि उस वक्त कृष्ण की ओर से उस दूती को क्या

उत्तर मिला था ? परन्तु आज की अगर घटना होती तो हरीश बिना एक पैसा लिए ही कृष्ण की तरफ से वकालत करता और दलीलों की लड़ियाँ पिरो कर उससे कहता—कि हे दूती ! नारी का एकनिष्ठ प्रेम बड़ी अपूर्व वस्तु है, संसार में उसकी उपमा नहीं । लेकिन तू तो सारी बात समझेगी नहीं—समझाने पर भी नहीं, पर मैं जानता हूँ कि कृष्ण किस आतंक से भाग आए थे ? और सौ साल तक उस तरफ उन्होंने मुँह तक नहीं किया । कंस-वंस सब झूठी बात है, असल बात है श्रीराधा का कृष्ण के प्रति यही एकाग्रित प्रेम । कुछ देर तक रुक कर वह फिर सोचने लगा—फिर भी उन दिनों मथुरा में छिपने की जगह काफी थी । लेकिन आजकल महामुश्किल है । न मागने की जगह मिलती है न मुँह दिखाने की । अब यदि भुक्तभोगी भगवान कृष्ण इस दास को अपने चरणों में बुला लें तभी उद्धार होगा ।

३

परेश

(१)

मजूमदार खानदान बहुत ही प्रतिष्ठित खानदान था । गाँव में उसकी भारी इज्जत थी । बड़े भाई गुरुचरन ही अभी इस वंश के दीपक थे । घर का सारा काम-काज उनके जिम्मे था । वह गाँव भर के मुखिया थे, यह भी कहें तो अतिशयोक्ति न होगी । गाँव में बड़े आदमी और भी थे, परन्तु लोगों की श्रद्धा और भक्ति का पात्र कुंजपुर में कोई नहीं था । जिन्दगी में उन्होंने बड़ी नौकरी कभी नहीं की—गाँव छोड़ कर अगर दूर चले जाते, तो बड़ी नौकरी क्यों नहीं मिलती ! परन्तु तरुणार्ई के पहिले दिनों में ही पास के एक जिला स्कूल में मास्टर हुए थे । यहाँ से डिगाने में कोई भी प्रलोभन उनके आगे टिक न सका । किसी भी हालत में उन्हें दूसरी जगह जाना मंजूर नहीं हुआ । तीस रुपया से पचास पर पहुँचे थे, अब तीन साल से पच्चीस रुपया पेन्शन पा रहे हैं । दुनियाँ में पैसा ही सभी कुछ नहीं है, अगर ऐसा न होता तो कुंजपुर की पंचायतों में गुरुचरन बाबू का फैसला ही सबको मान्य नहीं होता । उनकी अनन्य धार्मिक भावना, सच्चरित्रता और सौजन्य के सामने सारा गाँव शिर झुकाये रहता । उमर साठ के करीब होगी—कहीं अगर अच्छे आदमियों की चर्चा होती, तो आसपास के दस-बीस गाँवों में लोग यही कहा करते कि अरे वह तो गुरुचरन हो गया है । उनके स्त्री नहीं थी, था केवल एक लड़का । संसार में आश्चर्य करने लायक कोई बात नहीं, नहीं तो ऐसे गुणी पिता के घर में विमल जैसा कपूत नहीं पैदा होता ।

पुत्र के प्रति पिता की कोई आसक्ति नहीं थी। उनका सारा प्रेम अपने भतीजे—परेश—पर केन्द्रित हो गया था। हरिचरन का बड़ा लड़का था वह, एम० ए० पास करके वकालत पढ़ रहा है। उसको अक्षरारम्भ से लेकर आज तक सभी कुछ चाचा ने ही पढ़ाया है। गुरुचरन बाबू को ऐसा प्रतीत होता था कि परेश ही मेरा लड़का है। विमल की अयोग्यता का दुःख गुणी परेश को देख कर वह कम करते।

(२)

छोटा भाई हरिचरन इतने दिन परदेश में कोई मामूली नौकरी करता था। लड़ाई छिड़ने के बाद न जाने वह कैसे यकायक बड़ा आदमी हो गया। नौकरी को लात मारी और घर आकर रहने लगा। लोगों को बड़े से बड़े ब्याज पर रुपया उधार देने लगा, और अपनी औरत के नाम से एक बड़ा सा बाग खरीदा। दो-चार और ऐसे ऐसे काम किये जिससे उसकी दौलत की शोहरत पास-पड़ोस के पाँच-सात गाँवों तक पहुँच गई।

एक दिन हरिचरन ने नम्रतापूर्वक अपने बड़े भाई से कहा—‘दादा, आपको एक बात कहना चाहता था।’

गुरुचरन ने कहा—‘तो कहो न?’

हरिचरन ने कनपटी सहलाते हुए कहा—‘आप अब बूढ़े हुए, अकेले कब तक भार संभालेंगे।’

गुरुचरन ने कहा—‘सो तो ठीक है। साठ पार हो गया हूँ।’

‘—तभी तो कहता था, मैं अब घर पर ही रहता हूँ। सब चीजें इधर उधर बिखरी पड़ी हैं, यदि उन्हें ठिकाने से अपनी अपनी सँभाल में ले लेते—’

गुरुचरन ने क्षण भर छोटे भाई के मुँह की ओर देखा। फिर बोले—‘चीजें हमारे पास बहुत-ही कम हैं, और जो हैं सो बिखरी हुई नहीं हैं। तो क्या तुम्हारा अलग होने का ख्याल है।’ हरिचरन ने संकोच के मारे जीभ

को दाँतों तले दबा लिया—‘जो नहीं, जो नहीं। जैसा जो है वैसा ही रहेगा सिर्फ ख्याल रखना चाहिए, रसोई-वसोई भी भ्रष्ट का काम है—सब साथ ही रहेगा—सिर्फ थोड़ा सा दाल-भात अलग अलग पका लिया जायगा।’

गुरुचरन बोले—‘समझा। अच्छा कल से ही ऐसा होगा।’

हरिचरन ने पूछा—‘और सामान का क्या होगा?’

गुरुचरन ने उत्तर दिया—‘होगा क्या? इतने दिनों तक तो इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी और आज अगर तुम्हारा यही विचार है, तो तीनों भाइयों के तीन हिस्से लगेंगे।’

हरिचरन ने अचरज भरे स्वर में कहा—‘तीन हिस्सा? मझली भाभी तो विधवा है न, न उनके बाल न बच्चे, फिर तीसरा हिस्सा क्या होगा?’

गुरुचरन ने गरदन हिला कर कहा—‘नहीं, ऐसा नहीं, तीन भाग होंगे। मझली बहू हमारे श्यामाचरण की विधवा धर्मस्त्री है। जब तक जीती है, हिस्सा उनको मिलेगा ही।’

हरिचरन नाराज़ हो गया—‘कानून के मुताबिक तो नहीं मिलेगा, ग्वाना-कपड़ा की हकदार हैं।’

गुरुचरन ने ज़ोर दिया—‘वह भी घर की ही एक बहू हैं, एक हिस्सा उन्हें मिलना ही चाहिए।’

हरिचरन ने कहा—‘मान लीजिये, कल वह अपना हिस्सा बेंच लेती हैं, तो फिर?’

‘कानून यदि अधिकार देगा, तो वह वैसा भी कर सकेगी।’

‘हूँ, करेंगी नहीं तो क्या’—हरिचरन का चेहरा फीका पड़ गया। दूसरे ही दिन हरिचरन डोरी और फीता लेकर घर-घर नापने निकले। गुरुचरन ने न कुछ पूछा न रोका। दो दिन के बाद ईंट, चूना, बालू, लकड़ी आदि की ढेर लग गई, और परिवार की पुरानी नौकरानी ने आकर यह समाचार सुनाया—‘कल से राज लगेगा, छोटे बाबू चहारदीवारी बनवायेंगे।’

गुरुचरन ने हँस कर कहा—‘देख ही तो रहा हूँ, बोल क्यों रही हो ।’

पाँच-छः रोज के बाद एक दिन शाम को घर के द्वार पर किसी की आहट सुन कर गुरुचरन ने ताका—पनचू की माँ दिखाई दी ।

पनचू की माँ इस परिवार की पुरानी महरी है, उसने इशारा देकर कहा—‘मभल्ली बहू खड़ी है बड़े बाबू !’

बड़ी बहू के मर जाने के बाद यही विधवा भ्रातृ-बधू गृहिणी का काम चलाती थीं । वह आड़ लेकर अपने जेठ से बातें भी कर लेती थीं । आहिस्ते से उन्होंने कहा—‘समुर के घर वास में क्या मेरा कोई भाग नहीं है । जो छोटी बहू रोज मुझे गाली देती है, और ताना मारती है ।’

गुरुचरन ने कहा—‘अवश्य है, जैसे उन लोगों का भाग है वैसे तुम्हारा भी है ।’

पनचू की माँ ने कहा—‘अगर यही रवैया रहा, तो उस आँगन में इनका निर्वाह नहीं होगा ।’

गुरुचरन सारी बात सुन रहे थे, क्षण भर चुप रह कर बोले—‘परेश को चिट्ठी दी है, पनचू की माँ, वह आ जाय तो सब ठीक हो जायगा । यह दो-चार दिन बर्दाश्त कर जाओ ।’

मभल्ली बहू ने उधेड़बुन के स्वर में कहा—‘लेकिन परेश तो..... ।’

गुरुचरन ने बीच ही में रोक कर कहा—‘किन्तु-परन्तु नहीं मभल्ली बहू । परेश पक्का है, हरी उसका बाप सही, पर परेश मेरा है । सारी दुनियाँ एक ओर हो जाय पर परेश मुझे नहीं छोड़ेगा । अगर उसने अभी तक चाचा को नहीं पहचाना है तो मैं समझूँगा, व्यर्थ ही दूसरे के लड़के को जिन्दगी भर प्यार किया । उसे पढ़ा-लिखा कर आदमी बनाया !’

महरी ने कहा—‘वह बदलेगा कैसे ? उस साल तुम्हें छोड़ कर और कौन था, जो यम के मुँह से उसे बचाता ? छोटे बाबू और उनके इस दिलरुवा बहू का तो पता तक नहीं था । डर के मारे उसे कोई देखने तक नहीं जाता । इधर तुम और उधर बड़े बाबू—तुम्हीं दोनों ने उसकी जान बचाई ।’

मझली बहू बोली—‘परेश की अपनी माँ भी इतनी सेवा उसकी नहीं कर सकती थी, जितना बड़े बाबू ने किया है।’

गुरुचरन अपनी प्रशंसा सुन कर अस्थिर हो उठे—‘रहने भी दो।……’ वे दोनों चली गईं, तो गुरुचरन को लगा कि उसके पास विमल और परेश दोनों आकर बैठ गए हैं। खिड़की के बाहर तिमिराच्छन्न आकाश के प्रति अपनी दृष्टि दौड़ा कर उन्होंने लम्बी सांस छोड़ी, फिर मोटी लाठी लेकर सरकार घराने के बैठकखाने की ओर चले गए। वहाँ जाकर गुरुचरन कभी कभी चौपड़ खेलते थे।

दूसरे दिन दोपहर को गुरुचरन खाने बैठे तो देखा कि उत्तर की ओर जो बरन्डा है, उसका कुछ हिस्सा घिर कर उसमें हरिचरन की रसोई हो रही है। वहाँ से तीव्र कर्कश स्वर में निकली हुई नारी की कटु आवाज़ बार बार आने लगी। गुरुचरन के खाने में विमल उपस्थित हो रहा था लेकिन अचानक मर्द की मोटी आवाज़ आकर जब उक्त नारी के कंठस्वर में मिश्रित हो गई, तो बड़े बाबू के कान खड़े हुए और वे उठ गए। मझली बहू आड़ से हाथ हाथ कर उठी और पनचू की माँ ने गुस्सा में आकर इस दुर्घटना का रहस्य बिल्कुल प्रकट कर दिया।

बीच आँगन में खड़े होकर गुरुचरन ने छोटे भाई को जोर से कहा—‘स्त्रियों की बात पर मैं नहीं जाता, लेकिन तुम पुरुष होकर अपनी विधवा भाभी का इस प्रकार अपमान करते हो, तो उसके लिए घर में रहना मुश्किल हो जायगा।’

इस बात का उत्तर किसी ओर से नहीं मिला, लेकिन गुरुचरन जब आँगन से बाहर निकल रहे थे, तो छोटी बहू के परिचित गले की तीखी आवाज़ उनके कान में पहुँची—‘इस प्रकार अपमान नहीं करो, नहीं तो मझली बहू मकान ही छोड़ देंगी। तो भी फिर इससे क्या होगा?’

जवाब में हरिचरन कह रहा था—‘घरती नीचे धंस जायगी अरे उसे यहां से जाने को रोक ही कौन रहा है, चली जाय तो बला टले।’

गुरुचरन निस्पन्द होकर सब सुन रहे थे। बात खतम होने पर बाहर चले गए।

(३)

हेडमास्टर की लड़की के विवाह में गुरुचरन कृष्णनगर जा रहे थे, कि किसी ने कहा, दो-तीन दिनों पहले परेश कलकत्ते से आया है, आते ही उसे बुखार हो गया। व्याकुल होकर वह बगल वाले घर में घुसना चाहते थे कि सामने छोटे भाई को देखा और पूछा—‘परेश को ज्वर हो गया है?’

‘हूँ’—इतना कह कर हरिचरन बाहर चला गया। छोटी बहू के साथ की महरी ने रास्ता रोक कर कहा—‘आप अन्दर नहीं जा सकेंगे।’

‘जा नहीं सकेंगे, क्यों भला?’

‘घर में माता जी हैं।’

‘उनको एक तरफ हट जाने को कहो।’

महरी ने कहा—‘हट कर जायंगी कहाँ?’ लड़के के शिर में दर्द है, मालिश कर रही हैं’—इतना कह कर वह अपने काम पर चली गई। गुरुचरन गम्भीर होकर कुछ देर तक वहाँ खड़े रहे, फिर पुकार कर बोले—‘परेश! कैसे हो भैया?’

अन्दर से इस आतुरतापूर्ण प्रश्न का कोई उत्तर नहीं आया परन्तु उसी महरी ने कहीं से कहा—‘भैया को बुखार हो गया है, आपने सुन ही तो लिया।’

गुरुचरन दो-तीन मिनट वहीं खड़े रहे, फिर धीरे धीरे बाहर आए, और किसी को बिना कुछ कहे सुने ही स्टेशन की ओर चले गए।

वहाँ विवाह के अवसर पर किसी ने ध्यान नहीं दिया परन्तु कार्य संपन्न हो जाने पर उनके पुराने बन्धु हेडमास्टर ने एकांत में बुला कर पूछा—‘भैया आखिर बात क्या है बहुत उदास हो गए हो, क्या हरिचरन तुम्हारे पीछे हाथ धो कर पड़ गया है।’

बात टालने की नीयत से गुरुचरन ने कहा—‘नहीं तो ।’

‘नहीं क्या कहते हो, हरिचरन की शैतानी सबने सुन ली है ।’

गुरुचरन को जैसे सहसा सारी बात एक ही बार याद आ गई हो । वे बोले—‘हाँ घरेलू बात को लेकर हरिचरन ने कुछ गड़बड़ अवश्य मचाया है ।’

उनके कहने के ढंग से हेडमास्टर को क्षोभ हुआ । बचपन का साथी तो भी गुरुचरन अन्दरूनी बात उदासीनता के आवरण में छिपाना चाहता है, यही सोच कर हेडमास्टर ने इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं पूछा । गुरुचरन कृष्णनगर से घर लौट आए, उनकी अनुपस्थिति में बैठकखाने के आगे और मकान के इधर उधर हरिचरन ने गड़ढे खोद डाले थे और संभल कर चले बिना पैर टूटने का डर था । उन्होंने समझा कि हरिचरन अपनी मर्जी के मुताबिक परंपरागत वासस्थान का हिस्सा करना चाहता है और इसमें चहार-दीवारी पड़ेगी । उसके पास पैसे हैं, इसी से किसी को कुछ पूछने की जरूरत नहीं ।

अपने घर में कपड़ा बदल रहे थे कि इतने में मभली बहू को साथ लेकर पनचू की माँ पहुँची । गुरुचरन ने समाचार पूछना चाहा कि अकस्मात् मभली बहू सिसक सिसक कर रोने लगी । पनचू की माँ खुद भी रोने लगी । और रोते रोते उसने यही कहा—‘परसों सबेरे मभली बहू को धक्का देकर हरिचरन ने मकान से बाहर निकाल दिया । मैं न होती, तो अधमरी कर देता ।’

सारी बातों को सुनने में गुरुचरन को बहुत समय लगा ।

वह पाषाणनिर्मित प्रतिमा की तरह निःशब्द और निस्पन्द कुछ देर तक बैठे रहे फिर पूछ बैठे—‘क्या सचमुच हरिचरन ने तुम पर हाथ उठाया मभली बहू ?’

थोड़ी देर के बाद पूछा—‘परेश अभी भी बीमार ही है ?’

पनचू की माँ बोली—‘कहाँ ? उसको तो कुछ हुआ नहीं, बड़े बाबू । यही तो आज की गाड़ी से कलकत्ता चला गया है ।’

‘हाँ, तब तो अपने बाप की कीर्ति अवश्य जानकर गया होगा।’

पनचू की माँ बोली—‘जी।’

गुरुचरन के पैरों के नीचे से मानों धरती खिसकने लगी। वह बोले—
‘बहू ! इतने बड़े अपराध का प्रतिकार अगर न हुआ तो मैं इस मकान में और
नहीं रहूँगा। ‘अभी भी समय है, मैं गाड़ी मँगवाता हूँ, तुम को अदालत
में जाकर नालिश करना होगा।’

अदालत का नाम सुन कर मझली बहू चौंक उठी। गुरुचरन ने कहा—
‘भले घर की बहू-बेटियाँ अदालत में पैर रखना अनुचित समझती हैं। लेकिन
तुम्हारा इतना बड़ा अपमान मुझसे सह्य नहीं होगा। तुम भी अगर चुप रह
जाओगी तो भगवान तुम्हारे प्रति नाराज़ होंगे। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कह
सकता।’

मझली बहू उठकर खड़ी हुई—‘आप पिता के बराबर हैं, जो कहेंगे, मैं
करूँगी।’

हरिचरन के खिलाफ मुकदमा दायर किया गया। गुरुचरन ने पुराने
ज़माने की सोने की चेन (सिकड़ी) बेंच कर एक बड़े वकील को ठीक
किया।

जिस दिन तारीख था, अभियोगकर्ता की पुकार हुई। हरिचरन हाज़िर
था परन्तु मझली बहू का पता नहीं। वकील ने न जाने क्या कहा, हाकिम ने
मुकदमे को डिसमिस कर दिया। दर्शनार्थियों की भीड़ में परेश भी खड़ा था।
गुरुचरन का ध्यान उस पर गया वह मुँह फेर कर हँस रहा था।

गुरुचरन जब घर आए, तो सुना कि मायके में किसी की बीमारी का
संवाद पाकर मझली बहू वहाँ चली गई हैं। नहाने-धोने तक की फुर्सत नहीं
मिली, मायके का संवाद इतना चिन्ताजनक था।

पनचू की माँ हाथ-मुँह धोने के लिए गुरुचरन बाबू के पास पानी लेकर
आई तो रो पड़ी—‘रात भी झूठ दिन भी झूठ; बड़े बाबू ! सब झूठ ! आप

कहीं चले क्यों नहीं जाते, इस छुलिया संसार में आप जैसे भोले-भाले व्यक्ति के लिए स्थान नहीं ।’

ढोल बजा, पिपही बजी, घन्टा बजा, भाल बजी, मृदंग बजा और सत्रके ऊपर शंख की आवाज़ इतने जोर से हुई कि कुंजपुर का वातावरण सुखरित हो गया—बात यह थी कि हरिचरन ने मुक़दमा जीता था, इस विजयोत्सव में भगवती काली की पूजा धूमधाम से की थी ।

(४)

पैतृक आवास दो विभागों में विभक्त हो गया । एक ओर हरिचरन थे और दूसरी ओर गुरुचरन और पनचू की माँ । दूसरे दिन सबेरे पनचू की माँ ने आकर कहा—‘सामान सब दुस्त है, जाइये रसोई कर लीजिये बाबू !’

‘रसोई ?’

‘हाँ, याद आया, चलो चलता हूँ’—गुरुचरन उठने लगे तो पनचू की माँ ने कहा—‘जल्दी किस बात की बाबू, अभी बहुत सबेरा है, आज आप गंगा नहा आइये !’

‘अच्छा वही सही’—गुरुचरन गंगा जाने की तैयारी करने लगे । वह यंत्र की तरह लग रहे थे, पनचू की माँ को यह अच्छा नहीं लग रहा था, उसके जी में आया—यह वह बड़े बाबू नहीं हैं ।

वह बुढ़िया मकान के अन्दर आकर चिल्लाने लगी—कभी भला नहीं होगा, भगवान सब देखते हैं ।

किसका भला नहीं होगा, और क्या भगवान देखते हैं ? पता नहीं, लेकिन छोटे बाबू की तरफ से उस दिन एकदम शान्ति थी ।

इसी प्रकार दिन बीतने लगे ।

गुरुचरन के एक ही लड़का था विमलचन्द्र, लेकिन वह कुपूत निकला । कुछ महीने पहले दो-चार घन्टे के लिये वह घर आया था, तब से फिर दिखाई

नहीं दिया। उस बार एक बेग में पता नहीं वह क्या क्या रख गया था उसके चले जाने के बाद गुरुचरन ने परेश को बुलवाया, उसने आकर बेग के अन्दर की चीजों की जाँच-पड़ताल की और कहा—‘यह कुछ कागजात हैं, चाचा इसको जला देना चाहिए।’

गुरुचरन ने कहा था—‘कागजात अगर ज़रूरी हों तो !’

परेश ने जवाब दिया था—‘ज़रूरी तो हैं, लेकिन विमल भैया के लिए नहीं। फिर मुसीबत को घर में रखने से क्या फायदा ?’

गुरुचरन ने एतराज़ किया था—‘ऐसी चीज़ को अनजान में नष्ट नहीं कर देना चाहिए परेश। इससे किसी का भी सत्यानाश हो सकता है। कहीं तू ही इन कागज़ों को छिपा कर रख दे, फिर जो होगा, सो होगा।’

यह बात गुरुचरन को भूल गई थी, परन्तु आज सबेरे गंगा स्नान करके जब वह आये और खाना पकाने लगे तो अचानक उसी बेग को हाथ में लिए परेश, हरिचरन, गाँव के कुछ आदमी, थाना का दरोगा और पुलिस के कुछ सिपाही आ धमके।

मामला यह था कि विमल पर डाका डालने का अभियोग था। अभी वह फरार है, अखबार में पढ़ कर परेश ने पुलिस को खबर दी थी। बेग उसी के पास था। विमल बुरा लड़का है। वह शराब पीता है, उसमें और भी कई ऐब हैं। कलकत्ता में एक मामूली नौकरी करके वह निर्वाह करता है। लेकिन वह डकैती भी कर सकता है, यह सन्देह उसके पिता को स्वप्न में भी नहीं हुआ था। कुछ देर टकटकी लगा कर सामने देखते रहने के बाद गुरुचरन का ध्यान परेश पर गया, फिर उनकी उदास और सूनी आँखों में आँसू छलछला आये। उनके मुँह से निकला—‘सब सच, परेश ने एक बात भी झूठी नहीं कही।’

दरोगा ने और दो-तीन बात पूँछ कर उनको छुट्टी दी। जाते समय झुक कर उसने गुरुचरन के पैर छुए और कहा—‘आप अवस्था में बड़े हैं, ब्राह्मण हैं, मुझे क्षमा करें, इतनी बड़ी खेदजनक ज्यूटी मैंने कभी नहीं की थी।’

कुछ माल के बाद खबर आई कि विमल को सात साल की सजा हो गई ।

(५)

फिर उसी आडंबर से हरिचरन के यहाँ पूजा होने वाली थी । परेश ने रोका—‘पिता जी, यह सब रहने दें ।’

‘क्यों ?’

परेश ने कहा—‘मुझे अच्छा नहीं लगता ।’

उसके पिता ने कहा —‘अच्छा नहीं लगता है तो एक दिन के लिए कलकत्ते हो आओ । जगदंबा भगवती की पूजा है, ऐसे धार्मिक कार्य में बाधा देता है ?’

धार्मिक कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ी ।

एक दिन सबेरे गुरुचरन के मकान की ओर से रोने चिल्लाने की आवाज़ आई, क्षण भर बाद एक ग्वालन रोती रोती सामने आई, उसकी नाक से खून बह रहा था, हरिचरन ने घबड़ा कर पूछा—‘यह खून क्यों बहता है मोक्षदा, क्या बात है ?’

उसके रोने चिल्लाने की आवाज़ से सब एकत्र हो गये । मोक्षदा बोली—‘दूध में पानी मिला दिया है, ऐसा कह कर बड़े बाबू ने मुझे लाठी मारी है और गड्ढे में ढकेल दिया है ।’

हरिचरन ने कहा—‘अरे किसने ? दादा ?’

परेश ने कहा —‘चाचा ने ! झूठ !’

छोटी बहू बोली—‘बड़े बाबू ने छी पर हाथ उठाया, यह क्या तूने स्वप्न देखा है ?’

उस ग्वालिन ने देह में लगी हुई कीचड़ दिखला कर और भगवान की कसम खाकर कहा—बात ठीक है, दीवार का काम खतम हो गया था, लेकिन

आसपास के गढ़े वैसे ही पड़े थे, उन्हें भरा नहीं गया था, गुरुचरन के लाठी मारने पर मोक्षदा उसमें गिर कर घायल हो गई है।

हरिचरन ने कहा—‘चलो मेरे साथ अदालत में।’

गृहिणी ने कहा—‘तुम भी क्या कहते हो, बड़े बाबू कभी किसी औरत पर हाथ उठायेंगे, झूठ बात है।’

परेश चित्रलिखित सा खड़ा था।

हरिचरन ने कहा—‘बात झूठ होगी तो यह फँसेगी, लेकिन दादा तो झूठ नहीं बोलते। मारा होगा तो सज़ा होगी।’

पति की दलील सुन कर पत्नी को होश आया—‘ठीक कहते हो, लिए जाओ इसको अदालत में।’ और हुआ भी वही; गुरुचरन बाबू ने अपराध मान लिया, जज ने दस रुपए का जुर्माना कर दिया।

इस बार विजय के उपलक्ष्य में काली की पूजा नहीं हुई। लेकिन दूसरे दिन कुछ छोड़के झुण्ड बाँध कर गुरुचरन के पीछे पड़े। इस घटना पर किसी ने एक लोक-गीत भी बनाया था, वे उसे गा रहे थे।

(६)

रात के आठ बजे होंगे। हरिचरन का बैठकखाना मुखरित है। गाँव के बड़े-बूढ़े यहीं आकर उठते हैं, बैठते हैं, अचानक एक आदमी आया और एक मनोरंजक समाचार लोगों को सुनने के लिए मिला। बड़इयों के लड़के विश्वकर्मा की पूजा कर रहे थे। कलकत्ते से खेमटा गाने वाले दो आदमियों को उन्होंने बुलवाया था, उसी मजलिस में उस दिन गुरुचरन भी जा बैठे थे।

हरिचरन हँसते हँसते लोट-पोट हो गया—‘पागल कहीं के। कहो तो दादा हमारे जायेंगे खेमटा सुनने के लिए। कहाँ से तुम आ रहे हो अविनाश?’

अविनाश माँ की कसम खा कर बोला—‘मैं अपनी आँखों देख आया हूँ ।’ एक आदमी उठ कर गया, असलियत का पता लगाने । दस मिनट के बाद वह लौट आया, बात ठीक निकली । केवल नाच की बात नहीं थी, प्याला ढालने की बात भी थी । इस समाचार से उस गोष्ठी में एक प्रकार से कोलाहल उठा । किसी ने कहा—मैं जानता था कि ऐसा एक दिन होने ही वाला है । किसी ने कहा—जिस दिन बिना कसूर उसने एक औरत को पीट दिया उसी दिन मैं सब समझ गया । एक और आदमी ने कहा—जिसका लड़का डाका डाले, उसका बाप ऐसा नहीं तो और कैसा होगा ।

चुप रहा तो केवल हरिचरन ही । वह अनमना सा सब बातें सुन रहा था । उसको बचपन की बातें याद आ रही थी; यह क्या उसके बड़े भैया हैं ? यही क्या गुरुचरन मजूमदार हैं ।

(७)

ढाई पहर रात बीत चुकी थी । नाच समाप्त होने में अभी विलम्ब था । विश्वकर्मा की पूजा सबरे हो चुकी थी, किन्तु उत्सव को खींच कर लम्बा करने के लिए भक्त लोग शराब भी पी चुके थे । माँस भी खा चुके थे, और अब नाच देख रहे थे । बहुत ऐसे थे, जिनको होश नहीं था, और उन्हीं के बीच में बैठे थे गुरुचरन—उनके होठों पर रह रह कर मुस्कराहट दौड़ जाती थी । न जाने कौन एक आदमी चादर से अपना मुँह ढँके ढँके आया और उनकी पीठ पर हाथ रख दिया । उन्होंने चौंक कर मुँह फेरा, और पूछा—‘कौन हो ?’

उस आदमी ने कहा—‘मैं हूँ परेश । चलिए चाचा घर चले ।’

गुरुचरन ने बात नहीं दुहरायी । भतीजे के साथ चल पड़े ।

उत्सव का जो मंच था, उस पर बड़ा सा एक लैम्प जल रहा था । उसके मृदु मधुर और क्षीण आलोक में रास्ता के किनारे जब दोनों आए, तो परेश ने चाचा की ओर देखा—आँख में वह तेज नहीं, मुख पर वह चमक नहीं,

आदमी नहीं जैसे कोई भूत हो, गुरुचरन बाबू का इतना रूपान्तर हो गया था । इतने दिनों के बाद आज परेश को मालूम हुआ कि चाचा जी के लिए लोकलजा नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई है । इस चेतनावर्त्त देह को छोड़ कर वह कहीं मानो चले गए हों । उसने कहा—‘चाचा काशी चलेंगे ?’

इच्छित वस्तु पाने पर उल्लास के मारे भिखमंगा जैसे चिल्ला उठता है, वैसे ही गुरुचरन बाबू चिल्ला पड़े—‘जाऊँगा परेश, जाऊँगा, लेकिन कौन मुझे ले जायगा ?’

परेश ने कहा—‘मैं ले चलूँगा चाचा !’

‘तो चलो एक बार घर चल कर सामान-वामान ठीक कर ले ।’

‘नहीं चाचा, वहाँ न चलो । वहाँ की कोई भी वस्तु हम नहीं चाहते ।’

गुरुचरन को जैसे यकायक होश आया हो । कुछ देर नीरव रहने के बाद वह बोले—‘कुछ महीं चाहिए ? उस मकान की कोई भी वस्तु नहीं चाहिए ?’

परेश अपनी सजल आँखों को पोंछता हुआ बोला—‘ना चाचा कुछ नहीं चाहिए । उसके लिए बहुत से लोग वहाँ पड़े हैं, चलिए ।’

‘चलो’—गुरुचरन ने परेश का हाथ पकड़ा और निर्जन एवं तिमिराच्छन्न एस्ता अतिक्रमण कर दोनों रेलवे स्टेशन पर पहुँचे ।



फत्तिदेव

‘सौदामिनी !’

यह नाम मेरे पिता का दिया हुआ है। मैं अक्सर सोचती हूँ, उन्होंने मुझे साल भरसे ज्यादा नहीं देखा होगा फिर भी ऐसा चुना हुआ नाम कैसे वह रख सके ! मेरे अन्दर और बाहर को यथार्थ रूप में प्रकट करने वाला कैसा है यह नाम। पिता जी इस एक ही शब्द में बीजमंत्र की तरह मेरे भावी जीवन का सारा इतिहास मानो व्यक्त कर गये।

रूप ! हाँ, रूप मुझमें है, मैं मानती हूँ; लेकिन, ना, रे ना, वह दिमाग मुझमें नहीं है, बिल्कुल नहीं है। छाती चीरकर दिखलाई नहीं जा सकती, नहीं तो मैं दिखला देती। सौन्दर्य पर घमंड करने की धृष्टता अब मुझमें नहीं रही, बिल्कुल नहीं ! अट्टारह, उन्नीस ! हां, यही तो उमर होगी—हाँ, मैं उन्नीस वर्ष की ही हूँ; मेरा बहिरंग इससे अधिक पुराना नहीं हो सकता। किन्तु हृदय के अन्दर क्या है ! अन्दर तो एक वृद्धा बैठी है, अस्सी साल की। सूखे हाड़-गोड़वाली ! मेरे अन्दर बैठी हुई उस बुड्डी को नहीं देख रहे हो ! नहीं न ! अगर देख पाते तो डर के मारे तुम चीख उठते !

आज मैं घर में अकेली बैठी हूँ, तो भी लज्जा के मारे मन करता है डूब मरूं। अगर ऐसी बात है तो कलंक की वह स्याही सफेद कागज पर उड़ेलने की क्या जरूरत थी। लेकिन नहीं, लाज-बीज को तिलांजलि देकर आज मुझे सब कुछ बक देना पड़ेगा। अन्यथा छुटकारा नहीं।

और और स्त्रियों की भाँति मैंने भी अपने स्वामी को वैवाहिक मंत्रों द्वारा ही प्राप्त किया था। फिर क्यों नहीं उससे मेरा मन भरा ! इस उलट-पुलट के लिये जो कीमत मुझे चुकानी पड़ी, हे भगवान अपने बड़े से बड़े दुश्मन के लिए सो मैं नहीं चाहूँगी। लेकिन कीमत मुझे चुकानी जरूर पड़ी। पाप-पुण्य, लाभ-हानि, न्याय-अन्याय के मालिक परम पिता परमात्मा ने रस्ती भर भी मुझे क्षमा नहीं की, एक एक कौड़ी वसूल कर मेरा सर्वनाश कर दिया, जब मुझे उन्होंने राह की भिखारिन बनाकर बाहर निकाल दिया, लज्जा के नाम पर मेरे पास जब कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह गया, तब उन्हीं भगवान ने मुझे सुझाया—अरी ओ सत्यानाशी ! यह तूने क्या किया ? स्वामी तो तेरा आत्मा ठहरा, उसे छोड़ कर तू जायेगी कहाँ ! एक न एक दिन अपने सून अन्तर्जगत् में उसे बैठाना ही होगा। उसे बिना पाये, बिना अपनाये, तेरी खैर नहीं; इस जीवन में हो, आगामी जीवन में हो, कोटि-कोटि जन्म के बाद हो, स्वामी तो तुझे चाहिये ही।

जानती हूँ मैंने जो खोया उसका हजार गुना आज वापस पा चुकी हूँ। फिर भी यह बात कभी भी मैं भूल नहीं सकती कि मेरा यह शरीर नर का नहीं, नारी का देह है। आज मेरे अन्दर आनन्द रखने की जगह नहीं है, किन्तु हे प्रभु ! अपना व्यथा को भी तो रखने के लिए कोई जगह नहीं सूझ रही है। इस देह का एक एक अंग, अंग का एक एक परमाणु रात दिन रोता है—ओ री अछूत, ओ री पतिता, हमें और मत बाँध, हमें छुट्टी दे, हमें मर कर वचन दे !

अरे रहने भी दो, गड़े मुर्दों को क्यों उखाड़ती हो ?

बापा मर गये, एक साल की लड़की को गोद में लिये माँ अपने पीहर आई। मामा के बाल-बच्चे नहीं थे, घर गरीब था तो भी लोग मुझे हथेली पर लिये रहते। इस हाथ से उस हाथ, इस गोद से उस गोद। मैं सयानी हो गई तब भी मामा के पास अँगरेजी और बंगला की न जाने कितनी किताबें पढ़ती रही।

मेरे मामा घोर नास्तिक थे। भगवान वगवान कुछ नहीं मानते थे। उस घर में पूजा-पाठ या व्रत-त्यौहार होते कभी मैंने नहीं देखा। यह बातें मामा की आँखों में खटकती थीं।

नास्तिक ही क्या, वह अज्ञेयतावादी थे, ऐसा उनका कहना था, लेकिन यह भी तो एक विडंबना थी। पहले पहल इस बात का जिन्होंने आविष्कार किया उन्होंने लोगों की आँखों में धूल भोंकने के लिये आगे-पीछे बड़े बड़े वाज्जाल फैलाये, आकाश-पाताल को जाँड़ने वाली गण्यों से उन्होंने अपनी आत्मरक्षा की। लेकिन मुझे उन दिनों यह सब क्या मालूम था ! खाक भी नहीं। असल बात यह है कि सूर्य की अपेक्षा, सूर्य-किरण-प्रतप्त बालुकाराशि से ही अधिक फफोले पड़ते हैं। मामा का भा ठोक यही हाल था।

माँ बेचारी यह सब क्या जानती। अनमनी-सी किसी न किसी काम में लगी रहती, सो भी मुझे छोड़कर कोई नहीं जानता। माँ ने क्या किया और क्या नहीं, जाने भी दो। परन्तु मामा की विद्या सोलह आने की जगह अठारह आने सीख गई थी।

अच्छी तरह याद है, द्वार पर कोई मंगता साधू या संन्यासी आता तो मैं फुदकती फुदकती जाती और मामा को बुला लाती। और, मामा भी मेरे एक ही थे, वह ऐसे साधुओं के साथ हँसी-ठट्टा शुरू कर देते। बेचारों को भागने की राह नहीं सूझती। मैं हँसते हँसते लोट पोटा हो जाती, तालियाँ पीटती। इसी प्रकार हमारे दिन कटते।

केवल माँ ही थी जो कभी कभी असाधारण स्थिति पैदा कर देती। मुँह लटकाये आती और बोलती—भैया, सद्दू दिन दिन बड़ी होती जा रही है, अभी से अगर फ़िक्र नहीं करोगे तो समय पर लड़का मिलेगा !

आश्चर्य-चकित मामा कह उठते—अभी ! क्या पड़ी है ! अभी तो सद्दू के बारह भी नहीं पूरे हुये !...साहब लोगों की छोकरियाँ तो इस उमर में...

भारी गले और भीगी आँखों से माँ बीच ही में मानों रो देती—साहब की बात क्यों करते हो भैया, हम लोग तो साहब नहीं हैं। भगवान को चाहे न

मानो, वह भगड़ा करने नहीं आयेंगे, लेकिन समाज तो नहीं मानेगा ? उसे तो तुम चुटकी पर नहीं उड़ा सकते ?

मामा हँसकर कहते—क्यों फिकर करती हो बहन, मैं सब जानता हूँ जैसे मैं हँसकर तुम्हारी बात उड़ा देता हूँ ठीक इसी तरह इस तुच्छ समाज की भी बात उड़ा दूंगा ।

माँ का मुँह और भी लटक जाता, वह पैर पटकती हुई चली जाती । इन बातों को मामा भले ही उड़ा देते, लेकिन मैं तो बहुत डरती थी । न जाने मैं कैसे समझ जाती कि मामा चाहे जो भी कहें, लेकिन वह मुझे माँ से छुटकारा नहीं दिला सकते । शादी की बात उठने पर मैं क्यों डरने लगती सो कहती हूँ । हमारे घर से पच्छिम तरफ उस टोले के बीच से जो नाला बहता है, बरसात में गाँव का सारा पानी ले जाकर जो नदी में उड़ेल देता है, उस नाले के दोनों तरफ जिन दो परिवारों का निवास स्थान था, उनमें से एक घर हमारा और दूसरा था विपिन मजूमदार का । मजूमदार लोग गाँवके मालिक थे । जैसे ही घनी वैसे ही दुर्दान्त । गाँव के भीतर और बाहर असोम था उन लोगों का प्रताप । नरेन्द्र मजूमदार खानदान का एकमात्र वंशधर था । आज इतनी बड़ी भूट मुँह से निकालते वक्त मुझे कैसी वेदना हो रही, उसे अन्तर्यामी को छोड़कर और कौन जानेगा ? लेकिन उन दिनों तो सोचती थी कि मैं नरेन्द्र को सचमुच प्यार करती हूँ ।

यह मोह पहले पहल कब पैदा हुआ, सो मैं नहीं कह सकती । वह बी० ए० का छात्र था, कलकत्ता में । छुट्टियों में जब घर आता तो मामा के साथ दार्शनिक आलोचनायें करने आया करता । उन दिनों मानो अज्ञेयतावाद और उसकी चर्चा शिद्धिर्तो का फैशन हो रहा था । इसी बात को लेकर पढ़े लिखों में बक-भूक हुआ करती । अपनी प्रतिभा की गुरुता और गंभीरता दिखलाने के लिये मामा बहुधा नरेन्द्र बाबू के साथ मुझे भिड़ा देते । कई दिन शाम को जो दार्शनिक चर्चा छिड़ती तो पहर रात हो जाती, दोनों का वायुद्व

बीच ही में रह जाता। लेकिन जीतती मैं, बहुधा यही होता। क्यों ? सो मैं अब समझती हूँ।

बीच बीच में दलीलों की उसकी बौछार रुक जाती, मामा की ओर मुँह करके गंभीर विस्मय से वह बोल उठता—‘अच्छा बिजू बाबू इतनी थोड़ी उमर में ऐसी विशाल तार्किक शक्ति, इस प्रकार की दार्शनिकता किसी लड़की में पाई जाय तो क्या आप इसे आश्चर्यजनक क्षमता नहीं समझेंगे ?’

आत्म-प्रशंसा और स्वाभिमान से फूल कर मैं कुप्रा हो जाती, गरदन झुकाकर विनयका दम्भपूर्ण अभिनय करती। हाय रे दुर्भाग्य ! उस दिन तुम्हारी गरदन क्यों नहीं हमेशा के लिए झुक गई !

एक प्रकारकी शिष्ट हँसी हँसकर मामा कहते—‘जानते हैं नरेन बाबू, यह सब सिखाने की परिपाटी पर निर्भर करता है।’

लेकिन सच पूछो तो तर्क वितर्क का वह जाल मुझे उतना अच्छा नहीं लगता जितना नरेन के मुँह से सुनी हुई मण्टि कृष्टो* की वह कहानी। न कहानी खतम होती न मेरी अधीरता ही घटती। सुबह सुबह जब नींद खुलती तब से लेकर दिनभर सौ बार ख्याल आता—‘कब शाम होगी, कब नरेन बाबू आवेंगे ?’

इसी प्रकार दलील करते और कहानी सुनते मैं अपना तेरहवाँ साल पूरा करने को हुई, पर मेरा ब्याह नहीं हुआ।

उन दिनों भरी बरसात का मौसम था, वर्षा-ऋतु की प्रकृति-सुन्दरी जवानी पर थी। मजूमदार बाबू के बाग में एक विशाल मौलसिरी का पेड़ था, तले की धरती उसके फूलों से बिलकुल बिछ जाती। मैं अपने बाग के पास वाले उस नाले को पार करके रोब वहाँ जाती और मौलसिरी के फूल चुन लाती। उस दिन विलम्ब हो गया था, ऊपर काले काले बादल उमड़ आये थे। उनकी उपेक्षा

*ग्रीस देश की एक प्राचीन कथा।

करके मैं बाग की ओर बढ़ने लगी तो माँ ने रोका—दौड़ी जा तो रही है, बादलों को नहीं देखती ?

मैंने कहा—अभी नहीं बरसेगा माँ, भटपट दो-चार फूल चुन लाती हूँ ।

माँ ने रोका—सद्दू बात सुन, वर्षा होने ही वाली है । मत जा । वक्त नहीं रहा, शिर के बाल भीगे तो सूखेंगे नहीं, सो मैं कहे देती हूँ ।

मैंने माँको मनाया—पैरों पड़ती हूँ, जाने दो । वर्षा आई तो माली के उस छप्पर के नीचे जाकर अपने को बचा लूंगी ।

इतना कहते कहते मैं बाग की ओर दौड़ पड़ी । माँ अपनी इकलौती बेटी का दिल दुखाना नहीं चाहती थी । वह जानती थी कि फूलों से मुझे कितना स्नेह है । बचपन से ही फूलों के पीछे तितली की भाँति मतवाली रहना मेरा स्वभाव बन गया था । इसलिए उस दिन माँ ने मौन धारण कर लिया, अधिक कुछ नहीं कहा । कभी कभी सोचती हूँ—“माँ, यदि तू उस दिन बाल पकड़कर मुझे खींच लेती, जाने से रोक देती, तो इस प्रकार मैं कलङ्किनी न बनती ।”

फूलों से जब मेरा आँचल भर चुका तो वही हुआ जो माँ ने कहा था । बादल भ्रमाभ्रम बरसने लगे । मैं भागी, माली के छप्पर के नीचे जा खड़ी हुई । कोई नहीं था, खम्भे से पीठ टेक कर मैं खड़ी हुई और बादलों की घटा देखने लगी । इतने में कोई और आ धमका । मैंने मुँह धुमाकर देखा—‘माई रे ! यह तो नरेन्द्र बाबू हैं ! कलकत्ता से वह आ गए हैं, कहाँ । मैंने तो नहीं सुना !’

मुझे देखकर वह चौंक उठे—कौन है रे ? सद्दू, अरी तू यहाँ कैसे ?

बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं था, बहुत दिनों से उनके गलेकी आवाज़ नहीं सुनी थी । मेरे हृदय में आनन्द की मानो हिलकोर उठने लगी । शरमके मारे कनपट्टी पर लाली दौड़ गई; आँखें मिलाकर तो जवाब न दे सकी, नज़र नीचे गड़ा कर बोली—फूल बीनने रोज ही तो आती हूँ । आप कब आए ?

वहाँ माली की टूटी चारपाई पड़ी थी, आगे खींचकर नरेन उसी पर बैठ गया, बोला—आज ही, सुबह की गाड़ी से। लेकिन, यह तो बताओ कि किसके हुकूम से फूल चुराने आई हो ?

उसके स्वर को गम्भीरता से आश्चर्यान्वित होकर जब मैंने मुँह उठाया तो देखा—दबी हुई हँसी के मारे उसकी आँखें नाच रही हैं।

ओह ! जलमुँही कहीं की ! मेरे मुँह पर भी तो हँसी आ गई। मैंने कहा—तकलीफ़ उठा कर आती हूँ और चुन कर ले जाती हूँ, यह कोई चोरी हुई ?

नरेन्द्र चट से खड़ा हो गया और बोला—और यदि मैं इन चुने हुए फूलों को तुम्हारे आँचल में से फिर चुन लूँ तो उसे क्या कहेंगे।

मुझे डर लगा, जाने क्यों ! मैंने अनुभव किया कि वह अवश्य ही आकर मेरा आँचल पकड़ लेगा। फूल-भरे आँचल को मैंने एक हाथ से पकड़ रक्खा था, कौतूहल-मिश्रित मुग्ध आशका से शिथिल हो कर मेरी वह मुठ्ठी ढीली पड़ गई, देखते देखते सारे फूल आँचल से गिर कर जमीन पर बिखर गये !

यह तुमने क्या किया ?

मैं अपने को संभाल कर बोली—अच्छा तो है, अपने फूलों को चुन लीजिये न !

हैं ! इतना अभिमान ?

नरेन्द्र उठा, चुन-चुन कर फूल मेरे आँचल में रखने लगा। पता नहीं क्यों मेरी आँखें सजल हो आईं। मुँह फेर कर मैं दूसरी ओर देखती रही।

सारा फूल चुन कर मेरे आँचल में रख दिया, गाँठ देदी, फिर अपनी जगह जाकर वह बैठ गया। कुछ देर चुप-चाप मेरी ओर देखता रहा, बाद में बोला—जो हास-परिहास नहीं समझ सकता, ज़रा सी बात पर जिसको गुस्सा आता है, उसका दार्शनिक ज्ञान व्यर्थ है। मैं कल ही जाकर त्रिजूर् बाबू से कहूँगा, तुम्हें पढ़ाने में वह अपना समय क्यों नष्ट करते हैं ?

मैं आँखें पोंछ चुकी थी, बोली—किसे गुस्सा आया था ?

जिसने फूल फेंक दिए ।

फूल तो स्वयं ही गिर पड़े थे !

तो, मुँह भी क्या खुद ही फिर गया था !

मैं तो बादल देखती थी ।

बादल क्या इस तरफ नहीं हैं ?

कहाँ है ?

मैंने आत्मविस्मृत होकर मुँह उठाया तो आँखें चार हो गईं । नरेन्द्र खिलखिला कर हँस पड़ा, बोला—आइना होता तो दिखला देता । अपने ही मुँह-आँख में बादल और बिजली को साथ साथ तुम देखती, आसमान में खोजने की जरूरत न पड़ती ।

मैंने तब नज़र फेर ली । अपने सौन्दर्य की प्रशंसा मैंने काफी सुनी है, परन्तु उस दिन नरेन्द्र की प्रच्छन्न हँसी, दबा हुआ इशारा अन्दर घुस कर मेरे हृदय-पिण्ड को जोरों से हिला गया । पाँच ही साल पहले की तो घटना है, पर, लगता है, वह सौदामिनी मानो और ही थी ।

नरेन्द्र ने कहा—वर्षा रुकने पर मैं बिजू बाबू से कह आऊँगा, तुम्हें पढ़ाने लिखाने में अपने शिर के बाल क्यों सफेद कर रहे हैं ?

मैंने कहा—अच्छा ही तो होगा, मुझे भी उन बातों में मन नहीं लगता; कहानियाँ और उपन्यास ज्यादा अच्छे लगते हैं ।

नरेन्द्र ताली पीटता हुआ बोला—अच्छा, तो आज-कल उपन्यासों का पारायण चल रहा है ! हूँ !

मैंने कहा—फिर आप स्वयं क्यों कहानियाँ पढ़ते रहते हैं ?

नरेन्द्र ने जवाब दिया—सो तो सिर्फ तुम्हारे लिए । नहीं तो क्यों पढ़ता !

वर्षा की ओर लक्ष्य करके उसने कहा—अगर यह पानी न थमा तो क्या करोगी ?

भीगती भीगती चली जाऊँगी—मैंने कहा ।

अच्छा, अगर यह आसाम की पहाड़ी वर्षा होती तो तुम क्या करती ?

गल्प मुझे हमेशा प्रिय रहे हैं । ज़रा सी गन्ध पाते ही क्षण भर के लिए मैंने अपनी निगाह नरेन्द्र के मुँह पर डाली । पूछ बैठी—तो क्या आसाम में वर्षा के समय लोग बाहर नहीं निकलते ?

नरेन्द्र ने कहा—नहीं, बिल्कुल नहीं । वहाँ वर्षा की बूँदें शरीर में तीर की तरह चुभती हैं ।

अच्छा, तुमने वह वर्षा देखी है ?

हाय रे दैव ! मेरे मुँह से 'तुम' निकल गया । क्यों न उसी दिन यह जीभ गल कर गिर पड़ी ?

इसके बाद नरेन्द्र चट से बोल उठा—आगे हममें से किसी ने अगर एक दूसरे को तुम कह कर सम्बोधित किया तो मेरी कसम ।

आपने कसम क्यों दी ? मर जाऊँगी पर मुझसे आप के लिए तुम नहीं निकलेगा ।

क्यों ?

कसम-उसम कोई चीज नहीं, यह सब मैं नहीं मानती ।

वाह, मानती क्यों नहीं, एक बार जरा 'आप' कहो तो देखूँ ।

मनही मन मैं झल्ला उठी—जलमुँही ! कहाँ गया तेरा तेज, कहाँ गया तेरा ओज ? मुँह से तो कुछ नहीं निकला, पर हाय रे दैव ! यदि उसी दिन दुर्दशा की इति भी हो जाती !

बादल फट चुके थे, आसमान साफ होने लगा था। वर्षा इतनी हुई थी कि सारी धरती जलमय प्रतीत होती थी। संध्या उतर चुकी थी, आँचल में फूल, राह में कीचड़। बाग से मैं बाहर निकली।

नरेन्द्र ने कहा—चल, तुम्हें पहुँचा दूँ।

नहीं—मैंने गरदन हिलाई।

अन्तरात्माने विरोध किया था, अकेले चली थी। परन्तु अदृष्ट को कौन रोक सकता है ? बाग के बाहर आकर जब मैंने नाला देखा तो दंग रह गई। वह पानी से भर चुका था ? पार होती भी तो कैसे ?

नरेन्द्र साथ नहीं आया था लेकिन खड़े खड़े मुझे देख रहा था। मैं ठिठकी, वह समझ गया। पास आकर बोला—अब क्या करोगी ?

मैं रुआँसी हो गई, बोली—नाले में डूब मरूँ सो कबूल है, पर, इतनी दूर का चक्कर लगा कर सड़क से अकेली नहीं जाऊँगी। माँ देखेगी तो.....

मैं बात खतम नहीं कर पाई।

नरेन्द्र मुस्कुरा कर बोला—तो, चलो तुम्हें उस गिरे हुए पेड़ पर से नाला पार करा दें।

ठीक ही तो कहा ! खुशी के मारे मैं मन ही मन नाच उठी। इतनी देर तक मुझे ख्याल ही नहीं आया था, वहाँ से जरा दूर एक बहुत बड़ा पेड़ जाने कब से पड़ा था। आँधी में गिरा होगा। नाले पर बरसात में वह पुल की भाँति लगता था। बचपन में न जाने कितनी ही बार आई गई होऊँगी।

खुश होकर बोली—चलो न.....

नरेन्द्र प्रसुद्धित होकर बोला—वाह ! खूब कहा, चलो न !

आओ भी—मैं भुल्ला कर बोली।

वह बोला—तुम्हें भली भाँति पार किए बिना भला मैं लौट सकता हूँ ?

तुम क्या मेरे कर्णधार हो ?

कहने को तो कह दिया लेकिन अब सोचती हूँ, उस दिन यह क्या मेरे मुँह से निकल गया, और कैसे निकल गया ! वह मेरे मुँह की ओर गौर से देखने लगा, बोला—‘काश, सचमुच ही यदि मैं तुम्हारा कर्णधार हो सकूँ’ मैं घृणा के मारे मानो जमीन में गड़ गई !

जहाँ वह पुराना पेड़ उखड़ा पड़ा था वहाँ आई, देखा—इस पर से भी पार उतरना आसान नहीं है । एक तो उस विशाल वृक्ष की प्रकाण्ड छाया के कारण वहाँ योंही आँधरा था, तिस पर पानी में निरन्तर भोंगते रहने के कारण वह फिसलन से खाली नहीं था; ऊँचा-नीचा था सो अलग । नीचे होकर बरसाती पानी का प्रवाह हूँ हूँ करके बहा जा रहा था, मैं एक दफे पैर बढ़ाती, दूसरी दफे पीछे खींच लेती ! नरेन्द्र क्षण भर देखता रहा ।

मेरा हाथ पकड़ कर आ सकोगी ?

हाँ, सकूँगी—मैंने कहा । परन्तु उसका हाथ पकड़ कर मैं इस प्रकार हिली डुली कि बेचारा गिरते गिरते बचा, अपने को मुश्किल से बचा पाया । पल भर चुप-चाप वह मेरा मुँह ताकता रहा, फिर एकाएक उसकी आँखें चमक उठीं । बोला—देखना तुम्हारा कर्णधार मैं बनता हूँ या नहीं !

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—सो कैसे ?

ऐसे—यह कह कर मेरे दोनों घुटनों के नीचे एक हाथ और दूसरा हाथ गरदन के नीचे डालकर पलक मारते ही उसने मुझे उठा लिया, और अपनी छाती से सटा लिया; वह उसी रूप में उस वृक्ष-सेतु पर एक कुशल नट की भाँति खड़ा हो गया । डर के मारे मैंने अपनी आँखें मूँद लीं, बाँए हाथ से उसके गले को लपेट लिया । मुझे लिये हुए नरेन्द्र जल्दी जल्दी इस पार आ गया । लेकिन, जमीन पर उतारने से पहले उसने क्या किया ? किया क्या, मेरे होठों को मानो लाल सलाखों से दाग दिया ? रहने भी दो, मेरा अङ्ग अङ्ग रात

दिन घृणा के मारे गले में फाँसी लगाना चाहता है सो क्या मामूली घृणा के कारण !

सिहरती सिहरती मैं घर आई, होठ दोनों अभी तक जल रहे थे । किन्तु, लाल मिर्च की कड़ी जलन की भाँति वह जलन जैसे जैसे बढ़ती गई जलन का स्वाद भी उतना ही बढ़ता गया !

माँ बोली—कैसे तू यहाँ तक पहुँची सद्दु ! नाला तो समुद्र बन गया है ! उस पेड़ पर से पार हुई होगी, है न ? गिरी तो नहीं न, खैर !

नहीं माँ, पूर्व जन्म में उतना पुण्य मैंने नहीं किया था ।

उसके दूसरे दिन नरेन्द्र आया मामा से मिलने । मैं भी वहीं बैठी थी, उसकी तरफ देख न सकी । फिर भी, मेरे अङ्ग अङ्ग में बिच्छू मानो डंक मारने लगा । जी में आया, भागू यहाँ से । परन्तु, जमीन की चुम्बक शक्ति से मैं खिंच कर रह गई । उठ न सकी । मेरे पैर लड़खड़ाने लगे । नज़र उठा कर मैं देख भी न सकी ।

नरेन्द्र को क्या हुआ, शैतान जाने । बहुत दिनों तक लौट कर वह कलकत्ता नहीं गया । रोज देखा-देखी होने लगी । माँ को यह सब ना-गवार गुजरता । कई बार आड़ में बुला कर उसने समझाया—वे ठहरे मर्द, पढ़े लिखे आदमी, बेटी, तू वहाँ बैठ कर क्या सुनती रहती है ? चल, अन्दर बैठ । लाज-शरम भी

एक एक पग सौ सौ मन का भारी, उठता नहीं । किसी तरह मैं अन्दर जाती पर मन नहीं लगता, बैठक में जब तक नरेन्द्र होता तब तक उसकी स्पष्ट कण्ठ-ध्वनि मुझे अपनी ओर खींचती रहती । मेरे मामा और चाहे बुढ़ा भी रहे हों, कुटिल हृदय के नहीं थे । लिखाई-पढ़ाई, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क करके भगवान को उड़ा देना यही था उनका पेशा, यही था धन्धा । बेचारे को क्या पता कि उनकी नाक के नीचे बिल्कुल सामने क्या कुछ हो रहा है ! कैसी विचित्र बात है ! संसार के जितने विख्यात नास्तिक हो गये हैं वे प्रायः आला-दजों के बुद्धू थे । भगवान की महिमा अपरम्पार है । वह इन तार्किकों का

दिमाग अपने इस 'नास्ति' रूप में ही कुछ इस प्रकार उलझाए रखते हैं कि उन बुद्धियों को पता तक नहीं लगता। भगवान प्रमाण-सहित हों या प्रमाण-रहित, वह हों या न हों, उन्हीं की चिन्तना में सारा दिन बिता देना ! कैसा भोलापन है ! वे लोग सुबह शाम बैठ कर अपने अपने दिमागों की नसों को इसी बहस-मुवाहसे में थका डालते हैं ! मेरे मामा का भी ठीक यही हाल था। उन्हें और कुछ नहीं सूझता। बस यही अस्ति और नास्ति ! लेकिन माँ वैसी नहीं थी, वह बेचारी मेरी ही भाँति एक साधारण मानवो थी। उसकी आँखों में धूल भँकना आसान नहीं था। जरूर ही माँ को हमारे बारे में खटका हो गया था।

हम दोनों के दरम्यान बहुत बड़ी ज़ाई थी। सामाजिक विभेद और बाधा बड़ी विशाल थी। यह मैं भी जानती थी। सोचने बैठती तो अन्तस्तल का मधुकोष सूख कर लकड़ बन जाता। इसीलिये भावना के इस अप्रिय अंश को जी-जान लगा कर मैं पीछे धकेला करती। यह भी समझ में आता कि मैं शत्रु के बदले मित्र को ही पीछे धकेल रही हूँ। पर, इससे क्या ? जिस शराबी को एक बार भी कड़ी शराब पीने की लत पड़ गई, पानी मित्रा कर शराब वह फिर कैसे पिपगा ? निर्जल मदिरा से हृदय को जलाए बिना फिर उसे कैसे चैन मिलेगी ?

एक और बात थी जो मैं भूल नहीं पाती थी। मजूमदार-खानदान का वैभवपूर्ण ठाठवाट मेरी दृष्टि में हमेशा नाचा करता। बचपन में माँ के साथ न जाने कितनी दफे मैं मजूमदार बाबुओं के यहाँ गई थी। वे बड़े-बड़े घर द्वार, चित्रित भीतों की वह छटा, आलमारी, सन्दूक, माल-असबाब, शामियाना, तम्बू, इन सब वस्तुओं के साथ अपने भावी ससुराल का खाका जब मैं खींचती तो रोम रोम सिहर उठता।

मास-डेढ़मास बाद एक दिन सबेरे जब मैं नदी से नहा कर लौटी तो एक प्रौढ़ा को माँ से बात-चीत करते पाया। वह बिधवा थी। बड़ी गम्भीरता से गप्पें लड़ा रही थी। मुझे देख कर माँ से उसने पूछा—यही है न ?

माँ ने गरदन हिलाते हुए कहा—हाँ बहिन यही है मेरी लड़की, बढ़न्तू है । उमर उतनी नहीं है ।

वह औरत हँस के बोली—तो क्या हुआ, लड़के की भी उम्र तीस एकतीस होगी । जोड़ी दोनों की अच्छी रहेगी । कहने को उसकी दूसरी शादी है परन्तु लगता है प्रथम वर जैसा, बिल्कुल कुमार कार्तिकेय समझो ।

मैं झपट कर अन्दर चली गई । समझ गई, यह कोई घटक महाशया हैं, सम्बन्ध ठीक करने आई हैं ।

माँ जोर से चिल्लाई—बेटी, जरा यहाँ आकर बैठो ।

मैं कान लगा कर किवाड़ की ओट से सुनने लगी । दिल वेहद धड़क रहा था । सुना—चितोर कोई बस्ती है । वहाँ के राधाविनोद मुखर्जी के सुपुत्र हैं ‘घनश्याम मुखोपाध्याय’ । फूटी तकदीर में बहुत सा अलाय बलाय लिखा हुआ था, तभी तो ऐसा प्रातःस्मरणीय नाम उस दिन इन अभागों कानों को अङ्गार जैसा दाहक प्रतीत हुआ !

सुना—बाप नहीं, माँ हैं । छोटे छोटे दो भाई हैं, एक की शादी हो गई है दूसरा पढ़ता है । दुनियाँदारी का जंजाल बड़े भैया के सिर पर । एन्ट्रन्स पास करते ही उसे रोजगार में जुत जाना पड़ा । पढ़ना छूट गया । धान, चावल, तीसी, पटुआ, इन्हीं की दलाली करता है । कामचलाऊ पैसे मिल जाते हैं । वही गृहपति, उसी पर सारा परिवार का भार । इसके अलावा घर में ठाकुर जी की प्रतिमा है, शालिग्राम की शिला है, दो गाय हैं, विधवा बहन है—क्या नहीं है, सभी कुछ तो है !

कमी है तो सिर्फ बड़ी बहू की । सात साल पहले वह मर चुकी थी, शादी होने के बाद गिन कर तीस दिन तक जीती रही । उसके बाद घनश्याम की शादी के लिए कोई कोशिश नहीं की गई ! आज ही बात चलाई गई है, बाप रे बाप, सात साल ! जो औरत बातचीत करने आई थी, मन ही मन उसे मैंने कहा—‘कलभुँही, इतने दिन तक तू कहाँ सोती रही ?’

माँ ने नहीं माना, इतनी चिल्लाई कि पास जा कर बैठना ही पड़ा, आगन्तुक मुझे गौर से देख भाल कर बोलो—लड़की पसंद है, ब्याह का दिन अब ठीक हो जाना चाहिये ।

माँ की आँखें खुशी के मारे डबडबा आईं ।

तुम्हारे मुँह में अमृत बरसे—उसने आगन्तुक से कहा ।

मामा ने सुना तो तमक कर बोले—इन्ट्रेन्स पास है ! तब तो पढ़े को कहलवा दो हमारी सद्दू से अभी दो साल और अँगरेजी पढ़ जाय । माँ गिड़गिड़ाने लगी—तुम्हारे पैर पड़ती हूँ भैया चुप करो इतना सुभीते का सम्बन्ध और कहाँ होगा । एक कौड़ी भी नहीं लगेगी.....

मामा बोले—ठीक है, हाथ पैर बाँध कर गंगा में डाल दो न, वह भी कुछ नहीं लेगी ।

माँ ने कहा—चौदहवाँ साल पूरा गया, पंद्रहवाँ चढ़ा है ।

मामा बोले—सो तो है ही; अभी पन्द्रह साल और बाकी हैं !

माँ का चेहरा पीका पड़ गया । आँखों और कपार की आकुंचित रेखाओं का क्रम ऐसा लगा कि अब रोई तब रोई । उसने भर्राई आवाज़ में कहा—तो क्या उसका ब्याह न होने दोगे भैया ! यह अवसर अगर हाथ से गया तो भगवान ही जाने कलमुँही का क्या होगा !

मामा गुनगुनाकर बोले—केवल इसी डर से फूल सी लड़की को भाड़ में भोंक दोगी ! माँ ने कहा—लड़के को एक बार जाकर देख तो आओ मंजूर न होगा न सही ।

ठीक कहती हो । इतवार को जाऊंगा, आज ही चिठ्ठी डाल देता हूँ ।

बातचीत बीच ही में टूट जायेगी, इस डर से माँ ने सारा रहस्य अपने तक ही सीमित रखा था और मामा को एक तरीके से समझा बुझा दिया था । बेचारी को यह क्या पता था कि संसार में ऐसे भी आँख-कान हैं जिन्हें कैसी से कैसी सावधानता धोखा नहीं दे सकती । घर के पास अपने बाग में

मैंने सञ्जी बोई थी। दो तीन दिन के बाद दुपहरिया में खुरपी लेकर मैं घास निरा रही थी, आइट पाकर पीछे की और देखा तो नरेन्द्र। उसका वैसा फोका चेहरा कुछ दिनों के बाद एक दफे और देखा था, किन्तु सत्य कहती हूँ, उससे पहले कभी नहीं देखा था। हृदय ऐसी वेदना से भङ्कृत हो उठा जिसका मुझे अनुभव नहीं था।

उसने कहा—जा रही हो ? सच ! मुझे छोड़ कर !

बात समझ कर भी समझ में न आई हो। मुँह से निकल पड़ा—कहाँ ?

चितोर—वह बोला, और दायें पैर के अंगूठे से गोलो जमीन पर अर्ध चन्द्र बनाने लगा।

अब समझो, लाज के मारे क्यों उस दिन मेरा माथा नत हो गया। कुछ बोल न सकी। तालू से तालू सट रहा था।

नरेन्द्र फिर बोला—इसी से बिदा लेने आया हूँ; लगता है, यह आखिरी बिदाई है। किन्तु दो एक बात कहनी है, सुनोगी ?

कुछ कहते उसका कंठ मानो रुद्ध हो रहा था ! मैं तो बिल्कुल गूँगी हो रही थी, फिर भी शिर उठा कर उसकी तरफ देखा। ओह, उसकी तो आँखें डबडबा आई थीं; आँखें चार होते ही आँसू का प्रवाह उमड़ चला।

अरे पतित प्राणी। ओ री दुर्बल-हृदया नारी। पुरुष की आँखों का पानी बरदाश्त करने की क्षमता जब भगवान ने तुमको बिल्कुल नहीं दिया तब और उपाय ही क्या था। नरेन्द्र के आँसू देख कर मेरा भी वही हाल हुआ, भर भर आँसू बहने लगा।

नरेन्द्र नज़दीक आया अपनी धोती के खूँट से मेरी आँख पोंछकर हाथ पकड़ लिया, बोला—चलो उस पेड़ के नीचे जाकर बैठें; यहाँ कोई देख लेगा।

हृदय ने कहा—यह अनुचित है, अत्यन्त अनुचित ! परन्तु अभी भी तो उसकी पलकें भींगी हुई थीं, अभी भी तो उसका कंठस्वर भारी था !

बाग के एक ओर कंटीली चंपा का कुंज था। उसी के अन्दर ले जाकर उसने मुझे बिठाया।

एक प्रकार के संदेह से, एक प्रकार के भय से, मेरा हृदय कांप रहा था। किन्तु, नरेन्द्र स्वयं ही ज़रा दूर हट कर बैठता हुआ बोला—इस एकान्त निर्जन स्थान में तुम्हें बुलाया है सही, पर स्पर्श नहीं करूँगा। क्योंकि अभी तक तुम मेरी न बनी हो।

उसकी अंतिम बात सुनकर ये दुष्ट आँखें फिर मजल हो आईं। आंचल से आँसू पोंछकर नीचे जमीन पर, नजर टिकाकर बैठी रही, बिलकुल चुपचाप।

उसके बाद भी बातचीत चली, किन्तु रहने दो.....। आज भी उन दिनों की तुच्छ से तुच्छ घटना याद आ रही है। मुझे यह भरोसा नहीं है कि मरने पर भी उन घटनाओं को भूल सकूँ, एक ऐसा कारण है जिससे इतनी बड़ी दुर्दशा में भी मैंने विधाता को दोष नहीं दिया। नरेन्द्र के प्रति मेरे हृदय में जो स्नेह था उसे विधाता ने प्रसन्न चित्त से कभी मंजूर नहीं किया सो मुझे खूब याद है। वह स्नेह, वह सम्बन्ध मेरे जीवन का कितना बड़ा असत्य था, क्या भगवान से छिपा था ? इसीलिए नरेन्द्र की प्रणय निवेदन की क्षणिक उत्तेजना पल भर में शून्य से टकराकर कैसे लौट जाती सो मैं अब सोचती हूँ। उस दिन जब घर लौटी तो ऐसा मालूम पड़ा कि डाका डाल आई हूँ, सर्वनाश कर आई हूँ, हाय रे भाग्य, अन्तर्यामी का इतना बड़ा इशारा पाकर भी मुझे होश नहीं हुआ। होता भी तो कैसे ? कभी यह तो सोखा ही नहीं कि मनुष्य के हृदय में भगवान भी रहते हैं !

मामा बर-देखी के लिये चले। जाते समय उन्होंने कितना ही हास-परिहास किया। उदास चेहरा लिये हुए माँ खड़ी रही। मन ही मन उसने समझ लिया—जाना व्यर्थ होगा, भैया को बग पसन्द नहीं आयेगा।

किन्तु आश्चर्य की बात है कि मामा जब लौट कर आये तब उनकी गंभीरता देखने लायक थी। बोले—लड़का मैट्रिक बैट्रिक तो नहीं फिर भी उसे निरक्षर नहीं कहा जा सकता ! बहुत नम्र है, बहुत विनयी। और एक बात

सो क्या है जानती हो गिरी (गिरिजा) ? लड़के के मुँह पर सौम्य भाव छाया रहता है। देखने वाले का यही मन होता है कि इसके साथ थोड़ी बातचीत और करें।

खुशी के मारे माँ का चेहरा खिल उठा। उसने कहा—‘फिर काहे की देर मैया, कर दो न सद्दू का उद्धार ! लगा दो न किनारा।’

‘अच्छा, अब देखें, क्या होता है’—मामा ने गंभीरता से कहा।

मैं आइ में खड़ी, निराश की आशा पर ध्यान लगाये मन ही मन बोली—चलो, अच्छा ही हुआ अभी तक मामा किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। पर किसे पता था कि अपनी भानजी के भाग्य का निपटारा करने से पहले ही वह स्वयं भगवान के दरबार में बुला लिये जायेंगे। जीवन भर जिसकी सत्ता के प्रति मामा को संदेह रहा, उस दिन यकायक उसी महाकाल का दूत जब शिर पर आकर खड़ा हो गया, तो वह चौंक उठे। उस दिन की उनकी वह बात सुनकर हम भी कम नहीं चौंके। माँ को पास बुला कर मामा ने कहा था—‘मैं राय दिये जा रहा हूँ बहन, सद्दू की शादी वहाँ करा देना। उस लड़केको भगवान पर सचमुच विश्वास है। लड़की का जीवन सुखमय रहेगा।’ मैं यह सब सुनकर दंग रह गई ! माँ के मुँह की ओर देखा तो उसे प्रकृतिस्थ पाया। नास्तिकता के सम्बन्ध में मेरी माँ की यह धारणा थी कि मरते समय घुमा फिगा कर भगवान का नाम सभी लेते हैं। माँ कहा करती शराबी अपने शराबी साथी को प्यार चाहे कितना ही करे किन्तु वह उसका भरोसा नहीं कर सकता; भरोसा करेगा वह उसी मित्र का जो शराबी नहीं हागा। क्या जाने माँ की यह बात कहाँ तक सच है।

मामा हृदय की गति रुकने से मरे। हम ऐसे समुद्र में पड़े जिसका कोई कूल किनारा नहीं। किसी तरह दिन कट रहे थे लेकिन जिस घर में पूरे पन्द्रह साल की अविवाहिता लड़की मौजूद हो वहाँ आलस्यपूर्वक महाशोक मनाने की चिरकालीन सुविधा भला कैसे प्राप्त हो। आँसू पोंछ कर माँ उठी और कमर कस कर मेरी शादी के पीछे पड़ गई।

अन्त में बहुत दिनों पर नाना प्रकार की कथाओं के आवर्तन परिवर्तन के बाद, विवाह का मुहूर्त जब सचमुच ही मेरे हृदय में कोल की तरह आकर गढ़ा तब मैं अपने जीवन के सोलह साल पार कर चुकी थी। तब भी मैं आज की सी लम्बी थी। मेरे इस लम्बापन के लिये लज्जा के मारे माँ मरी जा रही थी। नहीं रहा जाता तो मुझे डांटतो—‘अभागिन कहीं की, तेरा सब कुछ अनोखा है ! बिल्कुल अलौकिक !’ एक तो अविवाहिता के लिये सत्रह साल की आयु ही महान् अपराध समझा जाता है, तिस पर मेरा यह लम्बा कद मानो बदनसीबी को खुना निमंत्रण दे रहा था। जिस रात सिन्दूर-दान (विवाह) हुआ, कम से कम उस रात के लिये भी यदि मैं किसी प्रकार तोड़ मरोड़ कर नाटी की जा सकती तो माँ वैसा करने को अवश्य ही तैयार हो जाती, किन्तु क्या ऐसा भी कहीं हुआ है ! मैं अपने स्वामी की उड़्डो तक पहुँच गई थी !

लेकिन सुहागरात में मैंने आँखें नहीं मिलाईं। कोई राग-द्वेष इसका कारण हो, सो बात नहीं; एक प्रकार की विवृण्णा थी, जिसने मेरी आँखों को मूँद दिया। उस समय किसी असह्य मर्मान्तिक वेदना का अनुभव हुआ हो, सो भी नहीं। उससे पहले रात रात भर जागकर कितनी ही बार मैंने मोचा था—नरेन्द्र आकर मुझे न ले जाय, तथापि मैं ज्यों की त्यों कुँआरी ही रहूँगी; किसी दूसरे के साथ मेरा ब्याह हो, यह बिल्कुल असंभव है। जिस गत ऐसा होगा मेरी नसें तड़क उठेंगी, मुँह से बलबला करके खून निकल पड़ेगा, घर-पकड़ करके लोग मुझे विवाह मंडप से उठा लायेंगे, विस्तरे पर डाल देंगे; यह विश्वास मेरे मन में जम गया था। लेकिन, कहाँ ! कुछ तो नहीं हुआ। मेरा विवाह भी ठीक वैसे ही सम्पन्न हो गया जैसे अन्यान्य बंगाली लड़कियों का होता है, मैं भी उन्हीं की तरह एक दिन ससुराल की तरफ चली। हुआ इतना ही कि जिस समय मैंने पालकी के सूरखों से कंटीली बग्गा के उस कुँज को देखा तो आँखें भर आईं। उस दिन का वह आँसू न जाने कैसी कैसी भावनाओं का, कैसी आकांक्षाओं का नीरव साक्ष्य बन रहा था।

जिस दिन चितोर वाला सम्बन्ध मेरा पक्का हुआ, उस दिन उसी पेड़ की आड़ में हम दोनों बैठे और बहुत देर के अश्रु-विनिमय के बाद यह निश्चय किया गया कि नरेन्द्र चुपचाप एक रात आयेगा, और मुझे ले-देकर निकल जायेगा। क्यों और कहाँ ? इन सवालों की ज़रूरत उस समय महसूस नहीं की गई।

और तो और, जाते समय यदि एक बार उसे देख पाती ! क्यों वह मेरी तरफ से मुँह मोड़ कर बैठ गया, क्यों वह फिर नहीं दिखाई दिया।

ससुराल गई। विवाह की अवशिष्ट विधियाँ भी पूरी हुईं। मतलब यह कि मैं अपने स्वामी के धर्मपत्नी के पद पर भली भाँति प्रतिष्ठित हो गई।

देखा, स्वामी के प्रति सिर्फ मेरी उपेक्षा हो सो बात नहीं, इसमें परिवार का प्रत्येक सदस्य मेरा साथ दे रहा है। ससुर नहीं, सौतेली सास भर रह गई हैं। उनके अपने दो लड़के हैं, एक बहू है, विधवा लड़की है; वह इन्हीं में उलझी रहती हैं। इतने दिन उनकी दुनियादारी निर्बाध रूप से चलती आई। अब सहसा सन्नह-अट्टारह साल की एक तगड़ी बहू को सामने पाकर सास जी का मन सशस्त्र और साकांच हो उठा। ऊपर से उन्होंने कहा—‘बहुरानी ! तुम्हारे आ जाने से मैं छुट्टी पा गई, आगे घड़ी दो घड़ी भगवान का नाम ले सकूँगी। दुनियादारी का जंजाल अब तुम्हारे मत्थे। अपनी कोख से पैदा करके भी धनश्याम को मैं इतना नहीं मानती, वह मेरे अपने लड़कों से बढ़ कर हैं, भगवान उसे चिरंजीवी बनावे। वही परिवार का प्राण है; वह पहले, दूसरे पीछे। यह बात गाँठ बाँध लेना बेटी ! और मैं ? मैं तो जीवन के दूसरे छोर पर पहुँच गई हूँ, सब साध पूरी हो चुकी है, मुझे और क्या चाहिये।’

परंपरा के अनुसार जैसे उन्होंने कहा वैसे ही मैं भी बोली—‘हाँ, माँ ! जैसी आपकी आज्ञा होगी।’

यह सब ठीक दो पहलवानों का ताल ठोंकना जैसा हुआ। दंगल में अखाड़े के किनारे पहुँच कर एक पहलवान जब ताल ठोंकता है तो कुशती के लिये तैयार दूसरा पहलवान भी सामने खड़ा हो कर ताल ठोंकता है।

जवाबी ताल ठोकने का मतलब ही यही होता है कि दाब-पेंच दोनों ही जानते हैं !

एक औरत दूसरी औरत को कितनी जल्दी पहचान लेती है, आश्चर्य है। मैं जैसे सास को चीन्ह गई वैसे ही दो-चार दिन में वह भी मुझे भाँप गईं। उनका संदेह दूर हुआ, वह समझ गई—नई बहू उन औरतों में से नहीं है जो रात-दिन सास-ननद, जेठानी-देवरानी से अपने पति की सुविधा के लिये लड़ा करती हैं। वास्तव में मुझे ऐसी बातों में न कोई रस था न उत्साह।

औरतों के तरकस में जितने भी तीर हुआ करते हैं, उनमें है ब्रह्मास्त्र, छिप कर बातें सुनना। इसमें कोई किसी का लिहाज नहीं करती। माँ, लड़की, सास, पतोहू, ननद, भौजाई सब सबकी बातचीत सुनती है। मुझे पता है, मैं जो स्वामी के पलंग पर न सोकर नीचे चटाई पर ही सारी रात पड़ी रहती, सो मेरी सास से छिपा न था।

नरेन्द्र के बदले दूसरे किसी की गृहिणी बनी तो कलेजा फट जायगा। ऐसा जो मैंने सोच रखा था, सो गलत निकला। कलेजा न फटा, न टुकड़े टुकड़े हुआ। फिर भी स्वामी की अंकशायिनी बनना मुझसे न हो सका।

मैंने अपने स्वामी को अदभुत प्रकृति का व्यक्ति पाया। मेरे वर्ताव पर कुछ दिन तो वह बिलकुल चुप रहे। मन ही मन नाराज हों या तन गये हों, ऐसा भी नहीं लगता था। केवल एक बार जरा हँस कर उन्होंने कहा—‘घर में एक और चारपाई डलवा लोगी तो क्या होगा।’

मैं बोली—‘जरूरत ही क्या है ? मुझे इससे तकलीफ थोड़े ही है ?’

उन्होंने कहा—‘न हो, लेकिन हमेशा नीचे सोना शरीर बरदाश्त करेगा ?’

मैं बोली—‘तुम्हें अगर इतना डर है तो मेरे सोने का इन्तजाम किसी दूसरे कमरे में कर दो।’

‘छी: ! छी: ! ऐसा भी हो सकता है ! लोग क्या कहेंगे, जानती हो !’

‘कहेंगे कह लेंगे, मुझे परवाह नहीं।’

वह क्षण भर मेरे मुँह की ओर ताकते रहे चुपचाप। फिर कहा—‘इस इठधर्म के पीछे कौन सी ऐसी बात है?’

मुस्कुराते हुये वह बाहर निकल गये।

मेरे मझले देवर महाशय किसी जगह नौकरी करते, चालीस मिलता था। परन्तु घर के काम में कौड़ी तक न देते। फिर भी, घर भर के लोग उनकी फिक्र रखते थे। बाबू आफिस जायेंगे, खाना तैयार। बाबू आफिस से आये मुँह हाथ घोने के लिये पानी, तौलिया, नाश्ता, पान, तम्बाकू और न जाने क्या चाहिये; परिवार का एक एक व्यक्ति यह सब जुटाने में बिजली की फुर्ती से सक्रिय हो उठता। मैं देखा करती, कभी कभी ऐसा भी होता कि मेरे स्वामी और देवर बाबू शाम को साथ ही लौटते, उनके लिये सब कुछ तैयार; घर के लोग नौकर-चाकर सभी उनका हुकुम बजाने के लिये लालायित दिखाई पड़ते। उन्हें जरा भी विलंब, थोड़ी भी असुविधा मानों दुर्वासा बना देगी, फिर वह घरती को रसातल मेज देंगे। और इधर मेरे स्वामी का यह हाल था कि इनकी ओर कोई देखता तक नहीं। बेचारे आध आध घन्टा तक एक लोटा पानी के लिये खड़े हैं। किसे फुरसत है जो इनकी ओर ध्यान दे! घर वालों का यह वर्तव! और, यह बेचारे जो रात-दिन तेली के ब्रैल की तरह किसी न किसी काम में जुते रहते, सो किसके लिये। छकड़े का भैंसा, गाड़ी का ब्रैल, इक्के का घोड़ा कभी कभी विद्रोह कर सकता है, परन्तु मेरे स्वामी इतनी कठिन जुताई में भी थकावट महसूस नहीं करते, किसी भी दुख से उनका हृदय चोट नहीं अनुभव कर सकता। इतना शांत, इतना धीर, इतना मेहनती मैंने अपने जीवन में किसी को नहीं देखा था। इस प्रकार का व्यक्ति मैंने उनमें देखा नहीं तो मुझे भी क्या इन बातों पर विश्वास होता? कहीं से सुन सुनकर ऐसे व्यक्तिस्व का आभास पाना बहुत ही मुश्किल है। बिना देखे विश्वास नहीं होता कि संसार में कोई मनुष्य इतना अच्छा हो सकता है। मुँह पर हँसी लगी ही रहती। कैसा भी अभाव अभियोग हो, अपने बारे में वह यही कहकर मुस्कुरा देते—‘रहने दो, मेरा काम चल जायगा।’

स्वामी के प्रति मुझ में ममता का अभाव था, किन्तु इतना ही नहीं, एक प्रकार की वितृष्णा भी थी। उपेक्षा भी थी। फिर भी इतने सरल, इतने निस्पृह व्यक्ति के प्रति घर भर का इकतरफा अत्याचार और इतनी उपेक्षा देखकर मेरे रोंगटे खड़े होने लगे। बगावत की आग सुलगने लगी।

गाय का दूध कुछ कम नहीं आता था, फिर भी उनके भाग्य में एकाध कलछी ही लिखी थी, कभी सो भी नहीं। एक दिन देख न सकी, तो सहसा मुँह से निकल गया, कह तो दिशा, फिर जी में आया—छो: छो: कितनी बड़ी बेशरमी मैंने की है लोग क्या समझेंगे। दूसरी बात यह कि अपने स्वजन परिजन ही जब इनके प्रति दया-माया का व्यवहार नहीं करते हैं तो मुझे ही क्या पड़ी है, मैं किस खेत की मूली हूँ ?

उक्त घटना के पाँच-छः दिन बाद की बात है। सबेरे का वक्त था, मझले देवर के लिये मैं चाय बना रही थी। रसोई घर में बैठे बैठे ही मैंने सुना, वह माँ को कुछ कह रहे थे। अभी अभी कहीं जाना था, लौटने में देरी होगी, कुछ खाकर जाते तो अच्छा था।

लेकिन माँ ने कहा—‘इतना सबेरे घर में खाने की चीज भला क्या हो सकती है ? घनश्याम, तुम इतना भी नहीं समझते ?’

मेरे स्वामी ने कहा—‘तो फिर रहने दो, लौट कर आऊँगा, तो खा लूँगा।’ वह चल दिये।

उस दिन मैं अपने को नहीं संभाल सकी। उस टोला से शादी-ब्याह का बैना बँटा था, सन्देश और रसगुल्ला। कल रात हमारे यहाँ भी उपहार की उक्त वस्तुयें आई थीं।

सास अंदर आई, तो मैंने पूछ लिया—‘रात को जो बाहर से मिठाइयाँ आई थीं वह सब खतम हो गईं ?’ वह तो मानो आसमान से गिर पड़ी, चिल्ला कर बोली—‘मिठाइयाँ ? कौन खरीद लाया बहू रानी ?’

मैंने कहा—‘वही जो बोस बाबू के यहाँ से आई थीं।’

‘माई रे, वह थोड़ी सी तो रही, कुछ बहुत तो थी नहीं कि अभी तक रहती, सब खतम हो चुकी है।’

‘तो घर में ही उनके खाने के लिये कोई चीज़ बना दी जाती, यह तो हो सकता था !’

सास ने कहा—‘तुम सुन ही तो रही थीं बहू । कुछ बना देती, सो कहाँ से होगा बैठे बैठे सुन रही थीं ।’

मैं चुप रह गई । अधिक मैं कहती हो क्या ? स्वामी के प्रति मैं कितनी अनुरक्त हूँ, यह भी क्या किसी से छिपा था ।

चुप तो मैं हो गई किन्तु भीतर ही भीतर जलन बढ़ने लगी । दुपहर को सास ने बुलाया—‘खा जाओ बहू, वक्त हो गया ।’

मैंने उत्तर दिया—‘अभी नहीं खाऊँगी, तुम लोग जाकर खा लो ।’

आज का मेरा मन सास सुबह से हाँ भाँप रही थीं, अब उन्होंने पूछा—‘बात क्या है ? खाना क्यों नहीं खाओगी ?’

‘भूख नहीं ।’

देवरानी मुझमें दो-चार साल बड़ी थी । रसोई घर के अन्दर से ही उसने शह दिया—‘जेठ बिना खाये चले गये हैं, इसीलिए बहिनजी को आज भूख नहीं लगेगी, है न बहिन यही बात !’

सास ने हाथ मटका कर कहा—‘अच्छा यह बात है, बहू यह नया ढब तुमने सीखा कहाँ से ?’

उन्होंने झूठ नहीं कहा—बात सच थी, मेरे लिये ढब ही था, फिर भी इसका जवाब तो देना ही चाहिये । इसीलिये मैं कह बैठी—‘क्यों न कहोगी माँ, तुम्हारे जमाने में क्या यह बात नहीं थी ? तुम लोग क्या स्वामी को खिलाये बिना ही खा लेती थीं ?’

‘खैर, वनश्याम का दिन इतने दिन बाद लौटा तो !’—मुँह बिचका कर सास रसोई घर में चली गई ।

देवरानी की आवाज़ सुनाई दी। वह मुझे सुनाने की नीयत से बोली—
‘तभी तो मैं कहती थी ! बुढ़िया मैना कहीं पाली जा सकती है।’

गुस्सा के मारे अपने कमरे में आकर लेट गई। बार-बार सोचने पर शमिन्दा हुई। मन में हुआ कि वह क्या कहेंगे ! क्या सोचेंगे वह ! आज तक मेरा वर्ताव उनके प्रति जैसा रहा है, इस घटना से उनका बिल्कुल मेल नहीं, विषम और विचित्र है यह बात ! लाज के मारे मानो मैं मरने लगी।

पर, मरी नहीं, बच गई। जब वह लौटे तो किसी ने उन्हें कुछ कहा नहीं।

बच तो गई, सत्य है। लेकिन, एक बात कहूँ ? तुम लोग विश्वास करोगे ? उस रात थके हारे स्वामी बिस्तरा पर पड़ते ही सो गये। नीचे चटाई पर मैं देर तक जगी रही। जब तक जगी रहा, तब तक यही सोचती थी कि इनके कान में बात पड़ जाती तो अच्छा था। स्वामी के बिना खाये आज मैंने नहीं खाया। इसी बात को लेकर भगड़ चैठी, चुपचाप इस अन्याय का सहन न कर सकी इन बातों पर तुम लोग विश्वास करोगे ? न कर सको तो तुम्हें दोषी न समझूँगी, विश्वास करो तो अहो भाग्य। आज अब स्वामी से बढ़कर मेरे लिये और कौन है ? उन्हीं का नाम लेकर कहती हूँ। मनुष्य का मन है, वह असीम है, इस तथ्य का आभास मैंने उसी दिन पाया था। मेरी जैसी पापिन के मन में भी इस प्रकार के दो प्रतिकूल स्रोत एक साथ ही प्रवाहित होने का अवसर पा सकते हैं, इस सत्य का अनुभव करके मैं दग रह गई !

मन ही मन मैं बोली, यह बड़े ही लज्जा का विषय है नहीं तो अभी इन्हें झुकभोर कर जगा देती और कहती—केवल भला आदमी बनने से ही काम नहीं चलेगा, कुछ और भी सीखना पड़ेगा। जिस स्त्री की तुम रस्ती भर भी खोज खबर नहीं लेते हो वही तुम्हारे लिए क्या कुछ कर सकती है, सो जरा आँख खोल कर देख लो.....

हाय रे दुर्दैव ! कैसी विचित्रता है ? जुगनू सूर्य भगवान को रास्ता दिखलाना चाहे ! तभी तो कहती हूँ, इस अभिमानी के मिथ्या अभिमान का न आदि था न अंत।

गर्मी के कारण या किस कारण बता नहीं सकती, कई दिन तक लगातार शिर में दर्द रहा। पाँच-छः दिन के बाद एक रात ऐसा हुआ कि देर तक छुट-पटाने पर जरा नींद आई। ऐसा अनुभव हुआ कि पास में बैठे बैठे कोई पंखा भूल रहा है। एक बार 'ठक' की आवाज हुई पंखा बदन से छू गया था। नींद टूट गई। दीप के मृदु मंद प्रकाश में देखा, वही थे ! निर्विघ्न निद्रा के लिये जाने कब से बैठे मुझे पंखा भूल रहे थे !

मैंने पंखा पकड़ लिया, रोष भरी मुद्रा में बोली—'तुम कर क्या रहे हो ?'

वह बोले—'चुपचाप सोओ, जागोगी तो दर्द नहीं छूटेगा।'

मैंने पूछा—'मेरा शिर दुखता है, सो किसने तुमसे कहा ?'

वह मुस्कराये।

'कहेगा कौन ? मैं स्वयं हाथ देखना जानता हूँ, किसीको कुछ हुआ तो समझ जाता हूँ।'

मैंने कहा—'क्या आज ही मेरा शिर दुखा है ? कभी और तुम्हें मेरे शिर दर्द का पता नहीं चला ?'

वह ज़रा और मुस्कराये—'हाँ, पता है। पर अभी तुम सोओगी या बातें करोगी ?'

मैं बोली—'अब नहीं सोऊँगी, दर्द चला गया है।'

उन्होंने कहा—'सब्र करो। तुम्हारे माथे में ज़रा दवा लगा दूँ।' वह उठ कर कोई मलहम या लेप ले आये और धीरे धीरे दाहिने हाथ की दो अंगुलियों से मेरे कपार की मालिश करने लगे। इच्छा से या अनिच्छा से, कह नहीं सकती, किसी तरह मेरा दाहिना हाथ जब उनकी गोद में जा पड़ा तो अपने बायें हाथ से वह उसे दबाये रहे। एक बार प्रायः मैंने जोर भी लगाया था, परन्तु व्यर्थ ! दुर्दान्त शिशु को पकड़ कर माँ जब अपनी गोदी में कैद कर लेती है तो बाहर से वह दृश्य अत्याचार सा प्रतीत होता है, तो भी उसी स्थिति में शिशु को निर्बाध नींद आ जाती है।

दुनिया कुछ भी कहे शिशु समझता है कि माँ की गोद ही उसके लिये निरापद स्थान है। उस समय मेरे इस अचेतन हाथ में भी मानो इसी प्रकार की समझ आ गई थी, नहीं तो वह कैसे जान सका कि निश्चिन्त निर्भय पड़े रहने का वैसा आश्रय स्थान उसे कहीं नहीं मिलेगा ?

वह आहिस्ते आहिस्ते मेरे कपार पर हाथ फेर रहे थे। मैं चुपचाप पड़ी रही। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहूँगी। प्रथम रात की वह आनन्द स्मृति मेरी खास अपनी है, मेरी ही बनी रहे।

प्रेम के सम्बन्ध में जो भी कुछ जानने की बात हो सकती सो सब मैं पीहर में सीख चुकी थी। ससुराल आने के बाद तक मेरा ज्ञान इतना सीमित था। परन्तु, प्रेम की वह शिक्षा कितनी गलत थी। जिस तालाब में थोड़ा सा पानी होता है, हाथ पैर पटक पटक कर लड़के उसमें तैरना सीखते हैं उसी तरह मैंने जो प्रेम करना सीखा था, वह भूल थी, इतनी सी बात अगर मैं पहले समझ पाती ! स्वामी के गोद में पड़ा हुआ मेरा हाथ यही बात तो समझाने की कोशिश कर रहा था। हाय, यदि मैं यह सब उसी दिन समझ गई होती।

सबेरे नींद टूटी तो घर में अपने को अकेले पाया, पता नहीं, वह कब उठकर चले गये थे। सहसा ख्याल आया मैंने स्वप्न तो नहीं देखा ? लेकिन मलहम की डिब्बिया जो सिरहाने रखी थी ! पता नहीं मन में क्या आया उस डिब्बी को माथे से भिड़ाकर बार-बार प्रणाम किया और आले पर रख आई।

सास जी उसी दिन से मेरे ऊपर कड़ी नज़र रखती थीं, यह मुझे पता था। मैंने भी अपने को समझा बुझा लिया—जाने दो तुझे इन सबसे क्या करना है ? अभी दो ही दिन हुआ है, यहाँ आये। और तू सास से झगड़ने लगी ? छी: छी:, लोग मुर्नेगे तो क्या कहेंगे ?

पर स्वामी की सुविधाओं के सम्बन्ध में भीतर ही भीतर कब से मैं उत्सुक रहने लगी, सो खुद भी नहीं जानती। तभी तो ! दो दिन बीतते न बीतते फिर झगड़ बैठी।

मेरे स्वामी को किसी आदृतिया दोस्त ने उस दिन सबेरे एक रोहू भेजा था । मछली बड़ी थी । मैं नहाने जा रही थी, देखा बरामदे के ऊपर मंडली जमी है । गप-सड़ाका चल रहा है । पास जा कर खड़ी हुई, मछली के टुकड़े-टुकड़े बना लिये गये थे । देवरानी मसाला पीस रही थी, सास समझा रही थी —‘यह मसाला भोल में पड़ेगा, वह लटपटी में, और वह खटाई वाली भोल में’.....बिल्कुल ही आमिषाहार वाली रसोई ! एकादशो थी । सास को और उनकी विधवा लड़की को आज खाना नहीं था किन्तु मैंने अपने स्वामी के लिए दाल, साग, सब्जीकी कोई भी व्यवस्था होते नहीं देखी । वह वैष्णव थे, मांस-मछली छूते तक नहीं । जरा दाल, जरा सब्जी, कुछ तो उनके लिए भी चाहिए । रुचिकर खाद्य उन्हें अप्रिय हो, सो बात नहीं । मैंने ध्यान देकर देखा था जब कभी कोई अच्छी चीज बनी थी तो पुलकित होकर उन्होंने खाया था, असीम परितृप्ति की आभा उनके मुखमंडल पर छिटक पड़ी थी सो मैंने देखा था ।

मैं बोली—‘उनके लिये क्या बनेगा अम्मा ?’

सास बोली—‘आज तो अब वक्त नहीं रहा बहू, घनश्याम के लिये दो चार आलू काफी होंगे; मैंने कह दिया है, चावल में ही डाल दो आसानी से सीभ जायेंगे । जरा सा दूध भी होगा ।’

मैंने पूछा—‘वक्त नहीं है ?’

मास विरक्त हो कर बोली—‘देखती नहीं हो बहू ? यही सब बनाने में दस ग्यारह घंटे जायेंगे । आज अखिल (मभले देवर) के दो-चार दोस्त आने वाले हैं । सभी दफ्तर में काम करते हैं । समय पर उनका खाना न हुआ तो पित्त चढ़ जायगा । मन काम में नहीं लगेगा । बड़ा साहब बिगड़ेगा, उन लोगों के लिये दस बजे तक वे चीजे बन जानी चाहिए । उसके बाद वैष्णव भोजन बनेगा ? मर जायगा महाराजिन, कुछ समझती भी हो उसके भी तो प्राण है ! बेटी, जरा होश से काम लो ।’

गुस्सा के मारे मैं दहक उठी, मुश्किल से अपने को संभाला । बोली — ‘आलू का चोखा और भात यह भी क्या कोई खाना है माँ ? जरा सी दाल होती, तो उनका काम चल जाता ।’

वह लाल आँखों से मेरी ओर देखकर रह गईं । पल भर बाद हाथ मुँह चमका कर बोली—‘तुम्हारे साथ तर्क-वितर्क करने का मुझे समय नहीं बहुत सारे काम पड़े हैं ।’

अब मैं फट पड़ी—‘काम-काज किसको नहीं है ? वह तीस रुपल्लियों की क्लर्की नहीं करते हैं तो कुली मजूर हो गये ? अम्माँ मुझसे यह नहीं देखा जायगा । मैं इस तरह सूखा-सूखा उन्हें नहीं खाने दूँगी । महाराजिन से नहीं होगा तो मैं जाती हूँ, खुद कर लेती हूँ ।’

सम्भ्रम दंग रह गईं । ज़रा देर मेरी ओर घूर कर आदिस्ते से कहा—‘बहू रानी, तुम तो इस घर में कल ही आई हो, इससे पहले घनश्याम क्या खाकर रहता था, जरा सोचो तो ?’

मैं बोली—‘सो तुम जानो । माना मैं कल आई हूँ । लेकिन, मैं क्या दुधमुँही बच्ची हूँ ? अब यह सब नहीं चलेगा ।’

मैं लपक कर रसोई घर में घुसी, महाराजिन से कहा—‘बड़े बाबू के लिए दाल, भुजिया और डालना* बनेगा । तुमसे न हो, अदहन छोड़ देना मैं अभी आई ।’

उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही मैं नहाने चली गई ।

उनका बिस्तरा रोज मैं अपने हाथ से लगाती । ऊपर सफेद साफ चादर होता । भीतर ही भीतर मेरे मन में उस सादी शय्या पर सोने का प्रलोभन पैदा हो रहा था । इतने दिनों के बाद यह बात बिस्तरा लगाते समय आज ध्यान में आई तो मैं बड़ी शर्मिन्दा हुई । यह लाज किसी दूसरे से नहीं, अपने से ही थी ।

बारह बज गये, तब वह सोने आये । इतनी रात गये क्यों मैं किताब पढ़ रही हूँ, क्यों जगी हूँ, उनका आहट सुनकर जब मुझे इसका भान हुआ, तो मैं फिर एक बार लजित हुई । मुँह उठा कर उन्हें देख तक न सकी !

*कई प्रकार की हरी सूखी साग सब्जियों को मिलाकर तैयार किया जाता है. बंगाल का लोकप्रिय व्यञ्जन है ।

उन्होंने पूछा—‘अभी तक न सोईं ?’

मैंने किताब पर से मुँह उठाकर घड़ी की तरफ देखा, चौक उठी—‘ओह हो । बारह बज गये ?’

लेकिन अंतर्धामी को पता था कि मैं पाँच-पाँच मिनट पर घड़ी देखती रही हूँ । स्वामी पलंग पर बैठे, हँसकर कहा—‘आज फिर कौन सा महाभारत मचाया था ?’

‘तुम्हें किसने कहा ?’

वह बोले—‘कहा नहीं था कि मैं हाथ देखकर अपनी अंगुलियों के पोर गिन कर हिसाब लगाता हूँ और सब समझ लेता हूँ ?’

‘ठीक है, समझ गये, तो अच्छा हुआ । अपने गुप्तचर का नाम न बताओ, न सही, मेरा क्या क्या कसूर उसने गिनाया सो तो कहो ?’

उन्होंने गम्भीरता से कहा—‘खुफिया ने कुछ नहीं कहा, मैं कहता हूँ । अच्छा, यह तो बताओ कि थोड़े में ही तुम्हें गुस्सा क्यों आ जाता है ?’

‘थोड़े में ? तुम क्या समझते हो तुम्हारे ही तराजू से सभी लोग न्याय-अन्याय को तौलते हैं ? फिर भी, यदि स्वयं तुम अपनी आँखों से यह सब देखते तो गुस्सा आये बिना न रहता ?’

वह एक बार और हँसे, कहा—‘मैं तो पागल हूँ, अपने पर होने वाले अत्याचार के लिये मुझे गुस्सा नहीं आता । चैतन्य महाप्रभु ने हमें पेड़ की तरह सहनशील बनने का उपदेश दिया है, तुमको भी अब वैसा सहनशील होना पड़ेगा ।’

‘क्यों ? मैंने क्या अपराध किया ?’

‘अपराध ? वैष्णव की स्त्री ठहरी, यही अपराध है ।’

मैंने कहा—‘सो हो सकता है परन्तु पेड़ की तरह क्या कभी मैं अन्याय सह सकूँगी ? चाहे प्रभु का आदेश हो, चाहे महाप्रभु का । दूसरी बात यह कि जिसके लिए भगवान की ही सत्ता नहीं, उसके आगे तुम्हारे यह महाप्रभु कौन होते हैं ?’

स्वामी सहसा चौंक उठे—‘कौन ? कौन भगवान नहीं मानता है ? तुम ?’

‘हाँ, मैं ।’

‘कारण क्या है ?’

‘नहीं है, इसलिए नहीं मानती हूँ, भूठे हैं; इसलिए नहीं मानती हूँ ।’

मैंने लक्ष्य किया—‘मेरे स्वामी का हँसता हुआ चेहरा धीरे-धीरे राख की तरह पीका हो आया है । थोड़ा चुप रहकर वह बोले—‘सुना था, तुम्हारे मामा अपने को नास्तिक कहते थे.....’

मैं बीच में ही उनकी भूल को दुरुस्त करती हुई बोली—‘नही, वह नास्तिक नहीं थे । वह थे एग्नोस्टिक (अशेयतावादी)

विस्मित होकर उन्होंने पूछा—‘एग्नोस्टिक क्या होता है ?’

मैं अभिमान की ध्वनि में बोली—‘जो आदमी अस्ति और नास्ति कुछ भी नहीं कहता उसे एग्नोस्टिक कहते हैं’ इस सम्बन्ध में अभी और बात चलती लेकिन बीच ही में वह बोल उठे—‘रहने भी दो । मेरे सामने फिर कभी इस तरह की बातें नहीं करना ।’

फिर भी मैं दलील को गोली दागने जा रही थी ! परन्तु उनकी मुखमुद्रा देखकर कुछ कहा नहीं गया । मैं जानती थी भगवान के ऊपर उनका अचल विश्वास है लेकिन नास्तिकता की बात सुनकर उन्हें इतना दुख होगा सो मैं बिल्कुल नहीं जानती थी । मामा के यहाँ ईश्वर के पक्ष और विरुद्ध में कई तरह की बातें सुन चुकी थी । कटु से कटु वाद-विवाद होते देखा था । ईश्वर का पक्ष खंडित होते देख बहुधा मैंने असीम परितृप्ति का उपभोग किया है । परन्तु बड़े से बड़े आस्तिक को भी इस प्रकार वेदना-विह्वल होते नहीं देखा । वह इतना प्रभ दीख रहे थे, इससे मैं भी कम दुखी नहीं हुई । सिर्फ एक बात हुई, बिना किसी तर्क के ही पतिदेव ने मेरा मुँह जो बंद कर दिया । उस अपमान से मैं नतमुखी हो रही । सोचती हूँ, मेरे अपमान का अन्त उसी दिन क्यों नहीं हो गया ।

जिस चटाई पर मैं सोती थी वह घर के कोने में रखी रहती । आज न जाने उसे किसने वहाँ से हटा रखा था । मैं ढूँढ़ मरी, नहीं मिली । उन्होंने यह देखा तो अपने बिस्तरे से एक तोशक देते हुये बोले—‘आज इसी पर सो जाओ इतनी रात को कहाँ ढूँढ़ती फिरोगी ?’

उनके कंठस्वर में आवेश का आभास तक नहीं था । तो भी उनकी वह बात अपमान का कांटा बनकर मेरे हृदय में गड़ रही थी । रोज तो मैं चटाई पर ही सोती थी । किसी तरह रात बिता देना ही मेरे लिये अभिमान की बात थी । आज स्वामी की इन बातों से मेरा गर्व चूर चूर हो जायगा, यह किसने सोचा था ।

पृथक सोने का बिस्तरा उन्हीं से हाथ फैलाकर ले तो लिया लेकिन लेटते ही मेरा आहत अभिमान मूकरोदन में परिणत हो गया । सुबह होते न होते मैं चटपट उठ बैठी और बाहर निकलने लगी । उन्होंने बुलाकर पूछा ‘इतने सबेरे ?’

मैंने कहा—‘नींद टूट गई, बाहर जाती हूँ ।’ पतिदेव बोले ‘एक बात सुनोगी ?’

आज से अंग अंग भर उठा, मैंने जवाब दिया—‘तुम्हारी वह कौन सी बात है जिसे मैंने नहीं सुना ?’

मेरे मुँह की ओर गौर से देखकर मुस्कराते हुये वह बोले—‘तो, सुनो । ज़रा नज़दीक आओ, फिर कहूँ ।’

मैं बोली—‘बहरी थोड़े ही हूँ, कहो न, नज़दीक आने की क्या ज़रूरत है ?’

‘नहीं, दूर से सुनने की यह बात नहीं, पास आकर ही सुन सकोगी’—इतना कहकर वह भुके और मेरा हाथ पकड़ लिया । मैंने जोर लगाया, अपने को

छुड़ाना चाहा । मैं किस तरह उनसे पार पाती ? एकदम उन्होंने सीने से मानो सटा लिया और हाथ से बलपूर्वक मेरी टुड्डी को ऊपर उठाया । तब आँखों से आँखें मिलाकर बोले—‘जो औरत भगवान को मानती हैं, आस्तिक हैं, पता है, वे क्या कहती हैं ? उनका कहना है कि स्वामी के समक्ष झूठ नहीं बोलना ।’

मैंने कहा—‘पर जो नहीं मानती, उनका क्या कहना है, जानते हो ?’

‘तुम कहो ।’

‘उनका कहना है कि किसी से भी झूठ न बोलना ।’

पतिदेव हंसते हुए बोले—‘क्या खूब । लेकिन, कल जो तुम इतना बड़ा झूठ बोल गईं सो कैसे ? कैसे तुमने कहा कि भगवान नहीं मानती ?’

मुझे लगा कि इतनी आशा से इतने विश्वास से कोई कह नहीं सकता । मैं कुछ बोलने जा रही थी पर मुँह से कुछ निकल नहीं रहा था; लेकिन हायरे देव । अहंकार का क्या करती, उसने उकसा दिया । मैं बोल उठी—‘भले आदमियों का यही काम है कि जवर्दस्ती अपनी बात मनवायें ? छोड़ो, कुछ और तो नहीं कहना है ?’

उदास मुँह से वह बोले—‘हाँ एक बात और ।’

‘सो क्या ?’

‘अम्मा से तुम्हें माफी माँगना होगा ।’

मैं जल भुन कर खाक हो गई, कहा—‘माफी माँगना भी क्या कोई खिलवाड़ है ?’

पतिदेव ने कहा—‘नहीं, सो तो नहीं है, परन्तु यह तुम्हारा कर्त्तव्य पालन ही कहलायेगा ।’

मैं चिढ़कर बोली—‘यही क्या तुम्हारे भगवान सिखाते हैं ? निरपराध जाकर अपराधी से क्षमा मांगे ?’

उन्होंने मुझे छोड़ दिया। थोड़ी देर मेरी ओर चुपचाप देखते रहे। फिर नरमी से बोले—‘भगवान का नाम लेकर तमाशा मत करो, मुझे दलीलों का ताना बाना पसंद नहीं। माँ से माफ़ी न माँग सको, न सही, पर उनसे कभी झगड़ मत बैठना।’

‘क्यों ? क्या इतना भी नहीं कहोगे ?’

उन्होंने कहा—‘नहीं, रोकना मेरा कर्त्तव्य था, बस।’

इतना कहकर वह उठे, बाहर जाने को। मुझसे रहा नहीं गया, बोली—‘कर्त्तव्य पालन का भार सारा का सारा क्या तुम्हीं लोगों ने अपने ऊपर लाद लिया है ? यदि न भाती होऊँ तो मुझे बाप के घर भेज दो। रहूँगी तो झगड़ा होगा हाँ, सो मैं कहे देती हूँ।’ वह जाते जाते रुक गये। कहा—‘बड़े बूढ़ों से लड़ना ही तुम कर्त्तव्य मानती हो ? अगर ऐसी बात है तो जब मरजी, जा सकती हो।’

वह चले गये। मैं वहीं धमू से बैठ गई। सिर्फ मुँह से निकला—‘हायरे संसार ! जिसके लिए चोरी करो वही कहे चोर।’

सबेरा उस दिन कैसे कटा, मैं ही जानती हूँ। लेकिन दुपहर में उन्हीं के मुँह से ऐसी बात सुनी कि आश्चर्य का अन्त नहीं रहा।

जब वह खाने बैठे तो विमाता ने कहा—‘बेटा, कल तो तुम्हें कुछ कहा नहीं, आज कहती हूँ। इस बहू के साथ मैं और अधिक दिन तक गृहस्थी नहीं चला सकूँगी। हुआ क्या सो तुमने सुन लिया ?’

स्वामी ने शिर हिलाकर स्वीकृति की सूचना दी।

सास बोली—‘किनाराकसी से काम नहीं चलेगा, मामले का फैसला तुम्हें करना होगा।’

वह मुस्कुरा कर बोले—‘फैसला तो तुम्हारे ही हाथ है।’

सास बोली—‘हे क्यों नहीं, मिनट भर में फैसला कर सकते हूँ। ऐसी बे संभाल औरत ! मुझे तो यह व्याह पहले से ही नापसन्द था। सिर्फ.....’

स्वामी ने कहा—‘यह सब सोचकर अब क्या होगा ? भली है तो, बुरी है तो, घर की है, बड़ी बहू है, उसे तुम भगा नहीं सकती ! और वह चाहती भी तो इतना ही कि मैं जरा अच्छा खाऊँ, अच्छा पहनूँ । क्या हर्ज है, वैसा ही इन्तजाम क्यों न कर लो ।’

सास बोलों—‘हृद कर दी घनश्याम तुमने भी ! मुझे भी बुरे-भले का ज्ञान है, इतने दिन तक वह नहीं थी तो मैं कैसे चलाती थी ?.....बेटा, तुम्हारा कसूर रत्ती भर भी नहीं ! पाँच हाथ की औरत जिस दिन बहू बन कर घर में आई, उसी दिन मैं समझ गई, इस बार मेरा कर्म फूटकर ही रहेगा । नहीं बनता है तो उसी के हाथ भण्डार की ताली सौंप दूँ ? जैसा तुम कहो । कहाँ गई ओ बहुरानी, जरा बाहर भी निकलो, यह रही चाभी’—इतना कहकर रोष के मारे उन्होंने जो चाभी का गुच्छा फेंका सो रसोई घर के पास भूँस से आ गिरा !

पतिदेव और कुछ नहीं बोले । चुपचाप खाना खा लिया । जाते समय कहते गये—‘औरतें सभी इसी रोग से ग्रस्त रहती हैं, किसको क्या कहा जाय ।’

मैं ध्यान से सुन रही थी । उनके मुँह से यह सब सुनकर खुशी के मारे मेरा दिल उछलने लगा । यह जानकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ कि पतिदेव असलियत को पहचान गये थे । रह रह कर इस अनुकूल अनुभव से मैं अपने दग्ध हृदय को शीतल करने लगी । सबेरे उस बात-चीत से जो चोट मुझे पहुँची थी, उस पर अमृतांजन लग गया ।

आज बार-बार यही सोचती हूँ कि बचपन से ही किताबें पढ़ पढ़ कर कितना ही भली बुरी बातें सीखी थीं, पर जो सीखना चाहिए वही नहीं सीखा । दुनिया में हजारों परिवार इसीलिये तहस-नहस हो जाते हैं, कि किसी जगह एक छोटी सी बात साफ साफ नहीं कही गई, किसी जगह तकल्लुफ में पड़कर अत्याचार सह लिया गया, किसी जगह मिथ्या संकोच ने गला धर दबाया । मैं अपने आपको कहती हूँ—ओ री अभागिन ! तुमने बहुत कुछ सीखा था, केवल यही नहीं सीखा कि औरतों को इज्जत औरतों का मान किसके रखने से रहता है !

किससे तिरस्कृत होकर औरतों का तास का महल भरभराकर घराशायी हो जाता है ! आह, यही तो तुमने नहीं समझा था । जब ऐसा हाल था तो भाग्य मेरा नहीं तो किसका बिगड़ता । शाम को अन्दर से किवाड़ लगाकर मैंने साज-शृङ्गार किया । बेवक्त की नींद का बहाना करके मैं सो गई जाकर स्वामी के पलंग पर, सो तो हुआ, पर उन्हें प्रत्युत्तर देती तो क्या गला रूंध जाता ? वह अन्दर आये, दुविधा और संकोच में पड़कर बार-बार इधर-उधर किया फिर बाहर चले गये; उन्हें रोक लेतीं तो क्या मेरा हाथ गल जाता ? सारी रात जमीन पर पड़े-पड़े रोई, सो तो हुआ, पर मुंह क्यों नहीं खुला कि अच्छा, आओ अपने पलंग पर सोओ, मैं इस पर न सही, नीचे हो सो जाऊँगी । इतना भर उन्हें कहती तो क्या मुँह पक जाता ? अभागिन कहीं की ।

दूसरे दिन सुबह बहुत देर बाद जब नींद टूटी तो अनुभव किया कि ज्वर चढ़ आया है । उठकर बाहर जाने लगी तो वह अन्दर आये । मैं नज़र नीची करके एक ओर खड़ी रही । वह बोले—‘तुम्हारे गाँव के नरेन्द्र बाबू आये हैं ।’

दिल धड़कने लगा ।

वह कहते गये—‘निखिल (छोटा भाई) जिस कालेज में पढ़ता है, वह भी उसी में पढ़ते हैं । चितोर भील में बत्तखों का शिकार करने के लिए निखिलने नरेन्द्र बाबू को कभी निमंत्रण दिया था । इसीलिए आये हैं । तुम तो उन्हें अच्छी तरह पहचानती हो न ?’

गरदन हिलाकर सूचित किया—‘हे परिचय । परन्तु घृणा के मारे मेरा नख-सिख मुलग उठा ।

पतिदेव ने कहा—‘अपने पड़ोसी का स्वागत सत्कार तुम्हें स्वयं करना होगा ?’

सुनकर मैं चौक उठी, डर लगा कि वह देख तो नहीं रहे हैं, परन्तु उनका ध्यान मेरी तरफ न था । उन्होंने कहा—‘कल रात से माँ की तबियत खराब है । निखिल बाहर है, अखिल आफिस में फँसा रहता है ।’

‘और तुम ?’—बिना गरदन उठाये ही मैं बोली । ‘मुझे रायगन्ज जाना है पटुआ खरीदने । जाना ही पड़ेगा ।’

‘वापस कब आओगे ?’

‘कल इसी वक्त । आज रात वहीं बितानी है ।’

‘तो उनको कहो कि कहीं और जाकर ठहरें । मैं ठहरी घर की बहू, ससुराल में उनके सामने कैसे हो सकूंगी ?’

स्वामी बोले—‘नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मैं सब ठीक-ठाक किये जा रहा हूँ । तुम उनके सामने न निकलो, न सही, पर बाहर ही खिला-पिला दोगी, सो तो होगा ?’

इतना कह कर वह चले गये ।

उस दिन पाँच मास पर नरेन्द्र को देखा था । दुपहर को वह खाने बैठा, मैं रसोईघर के अन्दर किवाड़ की ओट में बैठी थी । निगोड़ी आँखों ने नहीं माना । पर क्या कहूँ, उसे देखते ही सारा अतःकरण एक प्रकार की विरक्ति में भर उठा । ऐसी विरक्ति जो दूसरों को समझाना असंभव है । एक बड़ा सा काला बिच्छू टेढ़ी-मेढ़ी गति से जा रहा हो, एकाएक उस ओर नज़र पड़ने पर मन की जो स्थिति हो सकती है, ठीक उसी स्थिति से मैं नरेन्द्र की ओर देखती रह गई । छीः छीः, इसी की देह मैंने एक दिन छुई थी ! मेरा रोम रोम घृणा के मारे खड़ा हो गया ।

खाते समय नज़र उठा कर बीच बीच में चारों तरफ क्या ढूँढ़ रहा था, सो मैं जानती हूँ । महाराजिन कोई चीज परसने गई थी । नरेन्द्र ने आश्चर्य मुद्रा में जिज्ञासा की—‘तुम्हारी बड़ी बहू क्यों बाहर नहीं निकली ?’

महाराजिन जानती थी—नरेन्द्र मेरे गाँव-पड़ोस का आदमी है । जमोदार है । इसीलिए उसे खुश करने की नीयत से मुस्कुरा कर बोली—‘क्या कहूँ बाबू, बड़ी बहू को लाज बहुत होती है, उन्होंने स्वयं यत्नपूर्वक आपके लिए खाना बनाया है । अन्दर बैठे बैठे वही तो आपको दे जाने के लिए सभी चीजें

मुझे देती हैं। शरम न करें। अच्छी तरह खाइए। संकोच के कारण अगर आपने खाना नहीं खाया तो इनका दिल दुखेगा।’

महराजिन ने मेरी तरफ से जो कुछ कहा सो भूठ ही।

आदमी की शैतानी का भी कोई अन्त है? दुस्साहस की भी कोई सीमा है? नहीं। नरेन्द्र ने स्निग्ध हँसी हँस कर रसोईघर की तरफ नज़र उठायी और ज़रा जोर से बोला—‘मुझसे क्या शरम है सद्, आ, ज़रा बाहर निकल, देखूँ, बहुत दिन हो गये हैं।’

घृणा और लज्जा के मारे मैं काठ बन गई, किवाड़ पकड़े खड़ी रही। मेरी देवरानी भी रसोईघर में ही थी, परिहास के स्वर में बोली—‘बहिनिया की मथुरा तीन लोक से न्यारी है। टोल-परोस के आदमी हैं, भाई की तरह। शादी के दिन तक उनके सामने होती रहीं, बातें की तो आज क्या हो गया? देखना चाहते हैं तो ज़रा जाओ न!’

अब मैं उसे क्या जवाब देती?

दो या अढ़ाई बज रहे थे। घर के सभी लोग अपनी अपनी जगह में दबके हुए थे, किसी को नींद आ गई थी, किसी को नहीं। बाहर से नौकर आकर बोला—‘बाबू को पान चाहिए!’

‘बाबू कौन?’

‘नरेन्द्र बाबू।’

‘क्या वह अभी तक शिकार खेलने नहीं गये?’

‘कहाँ, वह लेटे पड़े हैं बैठक में।’

तो शिकार भी एक बहाना था।

पान भिजवा दिया बाहर और मैं बैठ गई जंगले पर। जब से इस घर में आई थी तब से यह जंगला ही मेरी सबसे प्रिय वस्तु था। सामने फुलवारी, बिल्कुल निकट चमेली का भाड़। अन्दर से बैठ कर बाहर की सभी चीजें देखी जा सकती हैं पर बाहर से अन्दर जंगला पर किसी को भी नहीं देखा जा सकता।

मानव प्रकृति की एक बहुत बड़ी विलक्षणता मैंने देखी है। होता यह है कि मुसीबत पहाड़ की तरह एकाएक शिर पर आ पड़ती है, विपत्ति की आँधी उठकर उसे भकभोर जाती है, उद्विग्न और अस्थिर कर जाती है और वह किसी तरह उसे एक ओर ठेलठाल कर उसी के सम्बन्ध में तुच्छ से तुच्छ बातें सोचने लग जाता है। पान भिजवा कर मैं नरेन्द्र की ही बातें सोचने बैठी थी, ठीक, पर इसी बीच मेरे स्वामी ध्यान में एकाएक आ गये और सारा अंतःकरण आप्लावित कर गये।

अपने स्वामी को जितना ही मैं देखती आश्चर्य उतना ही बढ़ता जाता। उनमें क्षमा करने की अपार क्षमता थी। पहले मैंने सोचा था कि नहीं, यह उनकी दुर्बलता है, मर्दानगी की कमी जाहिर करता है। अनुशासन की योग्यता जिसमें नहीं होती, बात बात में बही तो क्षमा किये चलता है ! लेकिन जैसे जैसे दिन बीतते गये मैं भलीभाँति समझती गई कि वह जितने बुद्धिमान हैं, उतने ही दृढ़ हैं। अन्दर अन्दर उन्होंने मुझे कितना प्यार किया है, इसका अनुभव बेशक मैं कर सकती हूँ लेकिन उस प्यार पर घमंड करने का साहस तो मुझे ज़रा भी नहीं होता।

एक दिन बात बात में मैंने उनसे कहा था—‘तुम्ही हो परिवार के प्राण फिर क्यों घर का एक एक आदमी तुम्हारी अवहेलना करता है ? तुम्हारे प्रति जो बुरा बर्ताव करता तुम चाहो तो उस पर अनुशासन की कार्रवाई नहीं कर सकते ?’

उन्होंने मुस्कराकर जवाब दिया—‘कहाँ, कहाँ कोई मेरी अवहेलना करता है ?’

परन्तु मैं निश्चित रूप से जानती थी कि उनसे छिपा कुछ नहीं था।

मैंने पूछा—‘अच्छा, यह तो बताओ, लोग बड़े से बड़े अपराध कर डालें, तुम सब को माफ कर सकते हो ?’

उन्होंने ज़रा हँसकर कहा—‘जो सचमुच क्षमा चाहता हो, उसे क्षमा मिलनी ही चाहिए, यही तो हमारे महाप्रभु का आदेश है।’

इसी से मैं दिन दिन सोचने लगी—यदि भगवान नहीं हैं तो इतनी शक्ति इतनी शांति मेरे स्वामी ने पाई कहाँ से ? कभी मैंने दृष्टि भर के लिए स्त्री का कर्तव्य पालन नहीं किया तो भी उन्होंने स्वामी-मुलभ सामर्थ्य से मुझे कभी दंडित, अपमानित या लांछित क्यों नहीं किया ?

मेरे घर में आले पर चैतन्य महाप्रभु की एक छोटी सी मूर्ति रखी थी, सफेद पत्थर की। कितनी ही बार एकाएक नींद टूट जाने पर मैं देखती—वह अपने विस्तरे पर प्रशान्त और निस्तब्ध होकर बैठे उस छोटी प्रतिमा की ओर देख रहे हैं, दोनों आँखों से बह रही है धार। उनकी यह स्थिति देख कर मुझे स्त्राई आने लगती। मन करता कि एक बार भी अगर वैसी तन्मयता से रो पाती तो आन्तरिक पीड़ा बहुत कुछ कम हो जाती। पास में एक और गौला था, उस पर उनकी कई धार्मिक पुस्तकें पड़ी रहती। पति की देखादेखी उन्हें मैं भी बीच बीच में पढ़ा करती आई। उन पुस्तकों की बात पर मैं विश्वास करती होऊँ सा बात नहीं तो भी पढ़ने में बहुधा मन लग जाता था। अज्ञात तल्लीनता में कितना ही समय बीत जाता, बीच बीच में एकाध बूँद आँसू भी ढलक पड़ते; पर मुझे यह सब मालूम* थोड़े ही होता ! बहुधा स्पृहा भी होती थी कि काश अपने पतिदेव की तरह मैं भी इन वस्तुओं को महासत्य समझ पाती !

इधर कुछ दिनों से एक अपरिचित व्यथा मेरे मन को घेरे रहती। उसे मैं समझ नहीं पाती। केवल यही अनुभव होता कि मानो मेरा अपना कहीं कोई नहीं है। फिर सोचती, शायद माँ के लिए मन रो रहा हो। इसी से कई बार यह भी निश्चय किया कि उनसे कहूँगी—मुझे माँ के पास भिजवा दो। फिर ख्याल आता कि इस घर को छोड़ कर और जाऊँगी कहाँ। इस प्रकार कितने ही संकल्प-विकल्प उठते और विलीन होते; उनके सामने मुँह नहीं खुलता।

सोचा आले पर से पुस्तक उतार लाऊँ और पढ़ूँ। एक पुस्तक थी जो मुझे अच्छी लगती थी; उससे मुझे सांत्वना मिला करती। किन्तु जंगले पर से जब मैं उठने लगी तो साड़ी का पल्ला तन सा गया, आँखें फेर कर देखा तो दंग

रह गई। मेरे आँचल का खूंट पकड़े जंगला के बाहर नरेन्द्र खड़ा था। मन तो हुआ कि जोर से चिल्लाऊँ, पर नहीं। पता नहीं वह कब से वहाँ खड़ा था। जंगले की तरफ मुँह करके खड़ी हो गई। और पूछा—‘शिकार करने आये हो?’

नरेन्द्र बोला—‘बैठो तो कहूँ।’

मैं जंगला के ऊपर फिर बैठ गई, पूछा—‘तो गये क्यों नहीं?’

‘घनश्याम बाबू का हुकुम नहीं हुआ। कह गये हैं हम ठहरे वैष्णव। यहाँ उहरकर आप जीव हत्या करने जायँ सो नहीं हो सकता।’

यह सुनते ही मुझे अपने पति पर गर्व हुआ, मैं फूल उठी। मन ही मन सोचा—यह आदमी भी देखे, कितने महान हैं मेरे स्वामी! उनकी कत्तव्य-परायणता पर ध्यान गया, ऐसी छोटी बात भी वह नहीं भूलते, उनके चरित्र में विन्दुमात्र भी दुर्बलता नहीं थी।

प्रकाश्य रूप से मैं बोली—‘तो फिर घर लौट जाते।’

उस व्यक्ति ने जंगले के छड़ों के बीच से हाथ बढ़ाकर चट से मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—‘सदू, उस बार टाईफाइड से मरते मरते बचकर जब मैं उठा तो सुना, पराई हो गई, मेरी नहीं रही। उस दिन बारबार यही मुँह मे निकला—‘भगवान मैंने कौनसा पाप किया है, जिसका दंड इतना कठोर दे रहे हो? टाईफाइड में मैं मर क्यों नहीं गया?’

मैंने पूछा—‘भगवान मानते हो?’

नरेन्द्र सकपका गया, बोला—‘न, हाँ, हूँ, नहीं, मानता नहीं हूँ, मगर उस वक्त.....’

‘रहने भी दो, बाद में क्या हुआ?’

नरेन्द्र ने कहा—‘ओह क्या पूछती हो? उस दिन मैंने सुना कि तुम अब भी मेरी हो, सिर्फ नाम भर को दूसरे की हो, अभी तक तुम किसी की

अंकशायिनी नहीं बनी, किसी दूसरे को अपना अंग प्रदान नहीं किया। जिस दिन मैंने यह सुना'.....

‘छी: छी:, चुप भी रहो ! पर, मैं पूछती हूँ, यह सब तुमसे कहा किसने ?’

‘तुम्हारी वह नौकरानी जो तीन-चार दिन पहले छुट्टी लेकर गई है’.....

‘हूँ ! तो मुकिया तुम्हारी ही खुफिया थी ?’

मैं जोर से अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगी पर वह कसकर पकड़े रहा। आँखों से दो बूँद आँसू भी टपक पड़े। सिक्त स्वर में बोला—
‘सदू, हमारा जीवन क्या इसी तरह चौपट हो जायगा ? इस तरह की दुघटना न हुई होती तो हमें एक दूसरे से कौन अलग रख सकता था ? जिस अपराध का कारण कुछ और हो, उसके लिये इतना बड़ा दंड मैं ही क्यों भोगूँ ? दुनिया भगवान भगवान करती फिरती है, लेकिन क्या सचमुच भगवान नाम की कोई सर्वश्रेष्ठ सत्ता है ? अगर होती तो बिना कसूर इतनी बड़ी सजा हमें मिलती ? बिल्कुल नहीं। तुम्हीं भला क्यों एक अज्ञात अपरिचित मूर्ख आदमी की’.....

‘रहने दो, बस करो।’

नरेन्द्र चौंक उठा, बोला—‘अच्छा, तुम्हारा जीवन यदि सुखमय रहा होता, तो भी मुझे सांत्वना मिलती; सो भी तो नहीं। फिर, मैं कैसे बचूँगा ?’

फिर उसकी आँखें लुल्लुला आईं। इस बार मेरा हाथ अपनी ओर खींचकर उसी से उसने आँसू पोछा और भर्राई आवाज़ में बोला—‘ऐसा क्या कोई सभ्य देश इस भूमंडल पर है, जहाँ इतना बड़ा अन्याय होता हो ? स्त्रियाँ क्या मनुष्य नहीं हैं ? फिर क्यों इस प्रकार उनका नापसंद व्याह करके जिन्दगी भर कोई उन्हें भूतता रहे ? कौन ऐसा देश है जहाँ की स्त्रियाँ अपने ऊपर जबर्दस्ती लादी हुई शायियों को इन्कार करके इच्छा के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकतीं ?’

मैं यह सब अच्छी तरह जानती थी, नवयुग की साम्य-मैत्री स्वाधीनता आदि की ऐसी कोई चर्चा नहीं थी, जिससे मैं अनजान होऊँ । क्योंकि मामा तो मेरे इन्हीं बातों के अखाड़िया थे ।

मेरा हृदय आन्दोलित होने लगा । प्रकट रूप से मैं बोली—‘तो तुम मुझे क्या कहते हो ?’

नरेन्द्र ने कहा—‘तुम्हें क्या कहना है, कुछ नहीं । तुम्हें सिर्फ यही सूचित करने आया हूँ कि उस दिन मौत के मुंह से बचकर जो उठा सो आज के इसी क्षण की प्रतीक्षा में । आगे कभी सुन लेना, नरेन्द्र जिस लोक से आया, उसी लोक को प्रयाण कर गया है, परन्तु मेरा यह अन्तिम निवेदन अस्वीकार न करना कि मरने पर मैं तुम्हारी आँखों के दो बूंद पानी पाऊँ । आत्मा अगर कोई वस्तु है, तो उसी दो बूंद आँसू से उसे परितृप्ति मिल जायगी ।’

मेरा हाथ उसी के हाथ में पड़ा रहा, मैं चुपचाप ढील दिये बैठी रही । अब सोचती हूँ, यह सब कितनी बड़ी भूल थी ! उस दिन यदि जौ भर भी जानती, कि मनुष्य के मन का यही मूल्य है, प्रतिकूल धारा में अपने को बहा देने का यही समय है । इतना ही इसमें साधन की जरूरत है—अगर मैं ऐसा जानती तो जरूर उस समय नरेन्द्र का हाथ छोड़ देती । जंगले की किवाड़ी बन्द कर लेती; किसी भी प्रकार उस व्यक्ति की बात इन कानों में नहीं आने देती । बात ही क्या थी, और इसके लिए अगर दो बूंद आँसू भी उसके खर्च हुए तो क्या हुआ ? लेकिन मेरी सारी देह थरथर काँपने लगी, बरसाती नदी के प्रखर प्रवाह में पड़कर सरकंडे का पौदा जैसे आमूल काँपता रहता है, ठीक उसी तरह लगा कि नरेन्द्र बड़ी ही सफाई से मेरी पाँचों अंगुलियों के द्वारा बिजली की पाँच सौ करेन्ट मेरे अंग अंग में प्रवेश करा रहा है, जिससे मेरा रोम रोम बेकाबू हुआ जा रहा है । उस दिन हमारे दरम्यान अगर लोहे के छड़ न होते और वह मुझे ले भागता तो मैं शायद ही चिल्लाती ! हम दोनों, पता नहीं कितनी देर, मंत्रमुग्ध-से खड़े रहे । थोड़ी देर बाद नरेन्द्र बोल उठा—‘सदू, ओ सदू ?’

‘क्यों, क्या कहते हो ?’

‘तुम तो जानती हो कि हमारे जितने शास्त्र-पुराण हैं सब भूठ हैं। स्त्रियों को बंधन में कसे रहना ही उनका लक्ष्य है, सती की जो महिमा गाई गई है सब इकतरफ़ा है, मर्दों के बारे में कहीं किसी बंधन का जिक्र नहीं। आत्मा क्या स्त्रियों के देह में नहीं होता ? उनकी कोई स्वाधीन सत्ता नहीं है ! पुरुषों के चरणों की दासी बनना ही क्या उनका एकमात्र कर्त्तव्य है ?’

‘बहूरानी, तुम लोगों की बात अभी कब तक चलती रहेगी ?’

मेरे शिर पर मानों पहाड़ टूट पड़ा। हम दोनों चौंक पड़े। नरेन्द्र हाथ छोड़कर अलग हो गया। मैंने मुंह फेर देखा तो बरामदे वाली खिड़की के ठोक सामने सास को खड़ी पाया।

बोली—‘बेटी, यह तो देहात है, यहाँ के लोग उतने सम्य नहीं। भाड़ के आड़ में रोते देखकर जाने कौन क्या कहेगा ? बाबू को घर बुलवा लेती बहू, देखने-सुनने में, गप-शप करने में सुभीता ही होता।’

जाने क्या जवाब देने में जा रही थी, लेकिन जीभ तालू से सट गई। एक शब्द भी मुंह से नहीं निकला।

वह ज़रा मुस्कराकर बोली—‘बोल तो मैं सकती नहीं, शरम के मारे मरी जा रही हूँ। इतनी तकलीफ़ सहकर धरती पर क्यों सोया करती हो ? खैर ! सुना है, बाबू दिन में तीन बजे चाय पीते हैं। चाय तैयार है, बहू, ज़रा उनसे पूछो तो—चाय वह ब्रेटक में पियेंगे या यहीं फुलवारी में खड़े खड़े ?’

मैं उठकर खड़ी हुई। बड़ी कोशिश की, फिर मुंह से निकला—‘तुम क्या रोज़ इसी तरह छिप छिप कर मेरी बातें सुना करती हो, माँ ?’

शिर हिलाकर सास बोली—‘नहीं बेटी, मेरे पास समय ही कहाँ। घर वे ही काम इतने हैं कि कर नहीं पाती। देख लो न, अभी भी इन बाबू क चाय के लिए रसोईघर में खुद जाना पड़ा था। न हा तो इसी घर में भिजव दूँ। देखतो हूँ, बाबू संकोची प्रकृति के आदमी हैं, मैं रहूँगी तो इनसे चाय

नहीं पी जायगी। सो मैं तो चली'.....यह कहती हुई सास जी वहाँ से चल दी। ऐसा होता है औरतों का आपसी राग-द्वेष बदला लेने में उन्होंने सास बहू के सम्मान्य-सम्बन्ध का जरा भी ख्याल नहीं रखा।

उसी घर में जमीन पर आँखें मूँद कर मैं लेट गई, इतना पसीना चला कि नीचे को जमीन भीग गई।

सान्त्वना की एक ही बात बच रही थी—वह आज नहीं आवेंगे, आज रात चुपचाप लेटी रह सकूंगी। किसी के पास कैफियत नहीं देनी पड़ेगी।

बार बार सोचा—काम धाम करूँ, यह भी क्या कोई दुर्घटना थी? कुछ नहीं। महज मामूली बात! और इसके लिए मैं इतनी परेशान हूँ? छी:.....
.. लेकिन मैं उठ नहीं सकी, बदन थरथर काँप रहा था।

शाम हो चुकी थी। इस घर में कोई दिया जलाने नहीं आया।

रात को आठ बजे के करीब सहसा उनके गले की आवाज़ सुनाई दी, खून जमकर मानो बरफ हो गया। वह नौकर से पूछ रहे थे—‘क्यों रे बंकू, नरेन्द्र बाबू आज ही क्यों चले गये?’ जवाब में किसी ने कुछ नहीं कहा। तब वह स्वयं ही बोले—‘हो सकता है, शिकार करने से मैंने रोक दिया था, यही कारण हो, परन्तु उपाय ही क्या था।’ जब वह अन्दर आये तो सास जी ने पुकारा—‘बेटा, ज़रा सुन तो जाना!’

सास जी नहीं मानेंगी, यह नया समाचार अपने पुत्र को सबसे पहले सुनायेंगी, सो मैं जानती थी। वह जब मेरे कमरे में आये तो मैंने अंग अंग को कड़ा कर लिया, किसी निष्ठुर और प्रचंड आघात की प्रतीक्षा में। परन्तु कहाँ, वह तो कुछ नहीं बोले। एक शब्द भी नहीं।

कपड़े उतार कर संध्यावन्दन करने चले गये जैसे कुछ हुआ ही न हो। जैसे सास जी ने उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ कहा ही न हो। खा पीकर फिर वह सोने आये।

उस रात मेरे साथ उन्होंने एक बार भी बातचीत नहीं की। सुबह हुई। नहा धो कर तैयार हुई कि रसोईघर में जाऊंगी। अन्दर जाने लगी तो देवरानी

मैं बोली—‘तुम भले ही रहो, मैं आ जाऊँ तो क्या कोई हर्जा होगा ?’

‘जरूरत ही क्या है और माँ न जाने क्यों मना कर गई हैं’... इतना कहकर देबरानी ने मुँह फेर लिया और मुस्कराने लगी; उसका वह मुस्कराना गरदन की तनी हुई नसों से साफ़ ज़ाहिर था। मैं दंग रह गई; कुछ देर तक वहीं खड़ी रही पीछे अपने घर आ गई।

देखा—घर भर के लोग मेरे प्रति घोर उपेक्षा के भाव अपने अपने चेहरे पर लादे हुए हैं। जिनको सबसे ज्यादा उपेक्षा होनी चाहिए, धृणा और विरक्ति का भाव जिनके मुँह पर सबसे तीव्र रहना चाहिए, केवल उन्हीं की मुखमुद्रा निर्विकार नज़र आई। पूर्ववत् प्रसन्न !

हाय रे दैव, उस दिन यदि एक बार भी जाकर उस उदार महापुरुष के निकट क्षमाप्रार्थिनी हो पाती तो इस तुच्छ जीवन का इतिहास ही और कुछ होता। किन्तु, सो तो कर न सकी। इस पापिन के मुँह से एक बार भी अपराध का विवरण सुनकर यदि वह कुछ बोलते तो कितना अच्छा होता। फिर भी किसी प्रकार मेरे दिन इसी घर में कटने लगे।

यह सब मेरे द्वारा कैसे संभव हो सका सो मैं आज समझती हूँ। काल की गति कितनी विचित्र है। भरी जवानी में लड़का चल बसता है, माँ चार दिन रोती है और फिर हल्की फुल्की हो जाती है। उसी प्रकार मेरे अपराध का बोझ हल्का तो होता गया परन्तु मनुष्य अपराध का जो दंड आसानों से सह लेता है, वही दूसरे दिन उसी दंड का भार शिर से उतार देना चाहता है ! समय के बीतने से अपराध-व्रण का चिह्न जितना ही छोटा होता जाता है, दंड का भार उतना ही बढ़ता जाता है। असह्य हो उठता है। यही तो मनुष्य का मन है, ऐसी ही उस मन की गठन है ! अनिश्चित संशय, सम्भावित सन्देह उसे घुलाते रहते हैं। एक दिन, दो दिन, तीन दिन इस प्रकार जब सात दिन बीत गये तो मैं अकुला उठी—मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि बिना कुछ कहे-सुने वह मुझे दंड दिये जा रहे हैं। बिना विचार का दंड, आज मुझे आश्चर्य होता है कि कहां से मैंने ऐसा सोचना सीखा था।

उस दिन सबेरे सुना, सास बोल रही थी—‘लौट आई बेटो ! पाँच दिन के लिए गई थी, फिर तूने कितना दिन लगा दिया मुझी ?’

मुकिया क्यों लौट आई है सो मैं समझ गई ।

मैं नहाने जा रही थी, मुकिया मिली । मुस्कुराकर उसने एक पर्चा थमा दी । मुझे लगा कि किसी ने दहकता अंगार हाथ पर रख दिया है । मन हुआ कि टुकड़े-टुकड़े करके उसे फेंक दूँ, लेकिन चिन्ही थी नरेन्द्र की । बिना पढ़े ही अगर फाड़ कर फेंक सकती, तो वह स्त्रियों की प्रकृति के प्रतिकूल होता न !

स्त्रियों के मन में विश्व के अक्षय कौतूहल चिरकाल से जमा हैं, ऐसे अवसरों पर क्या वे सोये रहेंगे ? चिन्ही लिए नहाने के घाट पर पहुँची पोखर में । पानी में पैर लटका कर उस काठ पर बैठ गई जो कपड़े पछीटने के लिए घाट पर पड़ा रहता है । चिन्ही को खोला, कुछ देर तक देखती रही, पढ़ने का मन नहीं करता था । लाल रेशनाई से लिखी थी । मालूम ऐसा होता था कि बीरबहूटी के कीड़े—एक दूसरे से सटे—बिलबिलाते घूम फिर रहे हैं । बाद में पढ़ा—एक, दो, तीन बार पढ़ा, फिर टुकड़े-टुकड़े करके उसे पानों में प्रवाहित कर दिया । उसमें था क्या ? और क्या रहेगा, वहो था, जिससे बढ़कर अपराध दुनिया में है ही नहीं । नहा धो कर घर लौट आई ।

धोबिन ने आकर कहा—‘मलकिन, बाबू के मैले कपड़े दो ।’

कुर्त्ता के पाकेट टटोलते वक्त एक पोस्ट-कार्ड निकला, गौर से देखा—मेरी चिन्ही थी, माँ की लिखी हुई । पाँच दिन आगे की तारीख पड़ी थी पर आज तक मुझे बतलाया नहीं गया !

पढ़ा, सब कुछ चौपट ! माँ ने लिखा था—रसोईघर छोड़कर और सब जलकर खाक हो गया । अभी उसी में किसी तरह सभी का निर्वाह हो रहा । आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी, आँसू तो एक बूँद भी नहीं निकला । कह नहीं सकती, इस प्रकार कितनी देर तक बैठी रही । धोबिन ने ध्यान भंग किया । झटपट उसे कपड़े गिन दिये और आकर घर में लेट गई पेट के बल । आँसू से तकिया भीग गया । ऐसी है ईश्वर भक्ति उनकी ! मेरी माँ गरीब है.

मैं शायद उनसे मदद करने को कहती, इसी डर से कार्ड दिखलाया तक नहीं ! मेरे नास्तिक मामा क्या कभी ऐसा कर सकते थे ?

आज वह घर आये तो बात की । बोली—‘हमारा घर जल गया है ।’

‘कहाँ सुना ?’—उन्होंने मेरे मुँह पर अपनी नज़र गड़ाते हुये कहा ।

गुस्सा के मारे वह पोस्टकार्ड उनके बदन पर फेंक दिया और बोली—‘घोबी को कपड़ा देते समय तुम्हारे ही पॉकेट से तो निकला है । देखो, मैं सब समझती हूँ । नास्तिक कहकर तुम मुझसे नफरत करते हो, पर हम भी छिप छिपकर दूसरों की चिढ़ी पढ़ने वालों, आड़-ओट करके बातें सुनने वालों से घृणा करते हैं । तुम्हारे घर भर का क्या यही पेशा है ?’

जो खुद अपराधी हो, उसके मुँह से कहीं ऐसी बात निकले !

लेकिन, अब मेरा दावा है कि इतना बड़ा आघात सिवा मेरे स्वामी के और कोई सह नहीं सकता । महाप्रभु चैतन्य का अनुशासन उनके अंतःकरण को अक्षय कवच की भांति इस प्रकार दिन-रात सुरक्षित किये रहता कि मेरा वाक्य वाण टकरा कर रह गया ! जरा फीकी हंसी हंसकर बोले—‘सद्गुरु, यह मेरा अनमनापन था जो पढ़कर उस कार्ड को पाकेट में रख छोड़ा, मुझे माफ करो ।’

यही पहला मौका था जब नाम लेकर मुझे उन्होंने पुकारा ।

मैं बोली—‘भूट, बिल्कुल भूट ! तुमने तो खबर भी छिपा रखी थी, सो क्यों ?’

उन्होंने कहा—‘तुम्हारा दिल दुखता इसीसे तत्काल नहीं कहा । सोचा था, कुछ दिन बाद कहूँगा ।’

बोली—‘हाथ पर हिसाब लगाकर कैसे तुम बातें मालूम करते हो मुझसे छिपा नहीं है । सिर्फ तुम्हीं नहीं, घर के सभी लोग मेरे पीछे खुफिया छोड़े हुए हैं । खुफिया, यूरोप की स्त्रियाँ ऐसे स्वामी का मुँह तक नहीं देखती, पता है ?’

ओरी अभागिन ! बकती जा जो मुँह में आये, दंड तो अब तक तुम्हे जरा भी न मिला । एक एक अपराध का दंड मिलेगा, देख लेना !

पतिदेव ज्यों के त्यों बैठे रहे स्तब्ध और शान्त । एक भी बात का जवाब नहीं दिया । अब सोचती हूँ—इतनी क्षमा भी क्या कोई कर सकता है ?

परन्तु मैं रुकी नहीं । जितनी ग्लानि जितना अपमान इतने दिनों से तिल तिल करके जमा होता आया था सो उन्मुक्त होकर मानो प्रचण्ड हो उठा । मैं जरा तमक कर बोली—‘मुझे रसोईघर भी नहीं ..।’

धीच ही मैं वह चौंक उठे—‘तभी तो मेरे खाने की व्यवस्था फिर बिगड़ गई है ।’

बोली—‘मैं इस बात की नालिश नहीं करना चाहती । हिन्दू परिवार में जन्म लिया है, इसी से तिल-तिल करके तुम लोग मुझे जलाते रहोगे सो नहीं होने दूँगी, गांठ बांध रखो । मेरे मामा के सब घर जल गये हैं लेकिन रसोईघर तो बाकी है । मैं वहीं चली जाऊँगी । रखो अपना घर, रखो अपना परिवार ।’

पतिदेव कुछ देर चुप रहे । बोले—‘अच्छा तो जा सकती हो लेकिन अपने गहने रखती जाना ।’

दंग रह गई सुनकर ! इतना हीन, इतना क्षुद्र ! ऐसे स्वामी की स्त्री हूँ मैं ! जले मुँह पर हँसी आ गई । बोली—‘गहने ? नहीं, मैं नहीं ले जाऊँगी ।’

दीप के मन्द आलोक में मैंने साफ देखा—उनका मुँह फीका पड़ गया था । बोले—‘नहीं नहीं, तुम्हारे गहने मैं छीनता नहीं हूँ, माँगता हूँ । बहुत दिकत में पड़ गया हूँ, रुपये चाहिए । कुछ दिन के लिए गिरवी रखूँगा ।’

लेकिन ऐसा दुर्भाग्य मेरा कि उनकी बात पर उसने विश्वास नहीं होने दिया ! मैं तमक कर बोली—‘गिरवी रखो, बेच डालो, जो मर्जी आये करो. तुम्हारी ही चीज ठहरी । मुझे इनका जरा भी लोभ नहीं । मैंने उसी वक्त बक्स खोला, तमाम गहने निकाल कर विस्तरे पर छितरा दिये । माँ के दिये हुये कंगन भर पहने रह गई और जो दो-चार गहने पहन रखे थे उन्हें भी

खोल खोल करके सामने रख दिया । इससे भी क्रोधाग्नि शांत न हुई तो विवाह के समय की दी हुई बनारसी साड़ी रेशमी बॉडिश आदि एक एक कर निकाला और सामने फेंक दिया ।

वह पत्थर की तरह निर्वाक बैठे रहे । धृणा और विरक्ति के मारे मेरा मन इतना आकुल हो उठा कि एक घर में रहना भी असह्य मालूम पड़ा । बाहर निकल कर अंधेरे में बरंडा पर एक तरफ सो गई, आँचल बिछाकर । लगा कि देहली की आड़ से निकल कर कोई बाहर चला गया है । मूक रुदन से छाती फटने लगी, तो भी जी जान का जोर लगाकर, मुँह में कपड़े ठूँसकर रोना रोका । लाज बचाई ।

नींद कब आ गई थी, पता नहीं । उठकर देखा तो भोर हो गया था, घर गई तो विस्तरा खाला पाया । दो एक रह गये थे, बाकी गहना वहाँ नहीं था । वही ले गये होंगे ।

दिन भर वह बाहर रहे । रात को बारह बजने पर भी उनका पता नहीं ।

मैं अर्धनिद्रित अवस्था में लेटी पड़ी थी । गंभीर रात्रि, दो बजे होंगे । उसी जंगले की किवाड़ी पर खटखट की आवाज़ हुई । समझते देर न लगी कि कौन है ? ठीक नरेन्द्र ही होगा । पता नहीं, कैसे मैं जानती थी कि आज रात को नरेन्द्र अवश्य आयेगा । पति घर नहीं हैं, मुखिया से यह खबर पाकर वह जरूर आयेगा । इस सुअवसर को हाथ से जाने नहीं देगा । उन दिनों बराबर मुझे यह अनुभव हो रहा था कि नरेन्द्र यहीं कहीं आस-पास में गुप्त रूप से रह रहा है । नरेन्द्र मेरी ओर से इतना निश्चिन्त था कि बोला—‘जैसे हो, उसी स्थिति में निकल आओ । मुकिया खिड़की खोले खड़ी है ।’

बगीचा पार कर कुछ ही दूर अंधेरे में उलझती हुई आगे गई । घोंडागाड़ी खड़ी थी, उस पर जा बैठी । हे धरती माता ! तू क्यों न उस समय फटो कि गाड़ी समेत मैं तेरे पेट में समा जाती !

कलकत्ता, बऊबाजार । छोटा सा जनाना कमरा । सुबह बच वहाँ पहुँची तो साढ़े आठ बज रहे थे । मुझे पहुँचा कर नरेन्द्र अपने निज के मकान में

चला गया। ऊपरी तल्ले के एक कमरे में नौकरानी ने बिस्तरा लगा रखा था, मैं लड़खड़ाती सी जाकर उस पर सो रही। आश्चर्य ! कभी भी जो घटना याद नहीं आई आज वही मेरी सारी भावनाओं पर सवार होकर सामने खड़ी हो गई। मैं नौ साल की थी तो पानी में डूब गई थी। लोगों ने बचाया। मुश्किल से होश आया, माँ का हाथ पकड़ कर घर के अन्दर गई और बिछौने पर पड़ रही। माँ सिरहाने बैठी थी, एक हाथ से शिर सहलाती और दूसरे हाथ से पंखा झलती हुई—माँ का चेहरा और उसके पंखा वाले हाथ का हिलना इतना भर ही उस समय मेरे सामने था, बाकी दुनिया सूनी थी।

नौकरानी ने आकर कहा—‘बहू, नल का पानी चला जायगा, नहा लो।’

नहा कर आई। उड़िया बॉमन खाना दे गया। शायद कुछ खाया भी, लेकिन उठते उठते कै हो गई। उसके बाद हाथ मुँह थोकर निर्जीव की तरह बिस्तरे पर लेट गई। लेटते ही नींद आ गई। सपना देखा—स्वामी के साथ झगड़ा कर रही हूँ। वह उसी तरह चुप बैठे हैं और मैं अपनी देह से गहना खोल खोलकर उनकी ओर फेंके जा रही हूँ। न गहने खतम होते हैं न फेंकना समाप्त होता है। जितना ही फेंकती जाती हूँ, शरीर गहनों से बार बार उतना ही भरता जाता है। सहसा चाँदी का अनन्त* खालकर जो फेंका तो जाकर उनके कपाल में लगा, आँखें मूँद कर वह उल्टा लेट गये। कपाल में

*बंगाल की स्त्रियाँ दाहिने हाथ के बाजू पर चाँदी का अनन्त पहनती हैं। भाद्रपूक चतुर्दशी तिथि को होने वाली अनंत पूजा के अवसर पर भारत भर में लोग अनंतसूत्र बाँधते हैं। लाल, पीले, हरे, नीले धागों को बँटते हैं, फिर उनमें चौदह गांठें डाल दी जाती हैं, स्थान भेद से इस प्रकार भेद भी देखा जाता है। पूर्वी भारत में उच्च कुलों की स्त्रियाँ चाँदी के चौदह गेर वाले अनंत बनवाकर पहनती हैं।

जो चोट लगी थी, उससे खून का फव्वारा छूट रहा था। शोणित का वह ऊर्ध्वमुख फव्वारा छत की कड़ियों से टकराकर नीचे वापिस बरस रहा था।

कह नहीं सकती, इस प्रकार कितना समय बीता या बीत सकता था। नींद टूटी तो तकिया आँसू से भीग चुका था।

आँख खुली तो देखा, अभी दिन काफी है। नरेन्द्र पास बैठा है, मुझे भकभोर कर जगा रहा है।

उसने कहा—‘सपने देखती थी ? हुआ है क्या’—उसने मेरे ही आँचल से मेरी आखें पोंछ दी।

सपना ? क्षण भर में मन जैसे कोई आश्वासन पाकर भर उठा।

आँख मलकर उठ बैठी, सामने ही कागज में बँधा एक कुछु पड़ा था।

‘तुम्हारे लिए कपड़े खरीद लाया हूँ।’

‘तुम खरीद लाये हो ?’

नरेन्द्र जरा हँसा—‘मुझे छोड़कर और कौन खरीद लायेगा ?’

×

×

×

इतना रोना मैं कभी न रोई हूँगी। नरेन्द्र बोला—‘अच्छा मेरे पैर छोड़ दो बहन ! उठ बैठो। मैं कसम खाकर कहता हूँ, तुम्हें चाहे कितना ही प्यार करूँ लेकिन मैं हमेशा तुम्हारी रक्षा करूँगा; मैं केवल औरों से; तुम अपने को मुझसे भी सुरक्षित समझो। आज से मुझे अपना सगा भाई जानो।’

‘हमेशा ! नहीं नरेन्द्र भैया ! मुझे फिर तुम वहीं पहुँचा आओ। उन्हीं के पैरों के पास। मेरे कर्म में जो लिखा होगा, सो भोग लूँगी। कल रात भर मैंने इन आँखों से उन्हें नहीं देखा और आज रात भी यदि नहीं देख पाई तो मर जाऊँगी ! भैया, मुझे पहुँचा दो।’

नौकरानी आकर, दीप जला गई। नरेन्द्र मेरे पास से उठा और मोढ़े पर जाकर बैठा। गम्भीर होकर बोला—‘मुकिया से मैंने सब सुना है। लेकिन अगर तू उन्हें इतना प्यार करती थी फिर क्यों नहीं कभी साथ सो.....।’

मैं बीच ही में चिल्ला उठी—‘तुम मेरे बड़े भाई लगते हो, यह बातें मत पूछो ।’

नरेन्द्र कुछ देर चुपचाप बैठा रहा । फिर बोला—‘मैं आज ही तुम्हें चितोर के उस बगीचे के पास छोड़ आ सकता हूँ, लेकिन क्या वह तुम्हें घर में रखेंगे ?’

मेरा हृदय कंपित हो उठा, लगा कि कलेजे को आकर कोई हलकाकर गया हो ! अपने को संभाल कर मैं बोली—‘घर में नहीं रखेंगे सो जानती हूँ किन्तु क्षमा अवश्य कर देंगे, इसमें मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं । अपराध चाहे कितना ही भारी हो, जो हृदय से क्षमाप्रार्थी होगा उसे मेरे पतिदेवता क्षमा अवश्य प्रदान करेंगे । उन्हीं के मुँह से यह बात एक दिन सुनी थी । जैसे भी हो, मुझे उन्हीं चरणों में दे आओ नरेन्द्र भैया ! भगवान तुम्हें राजा बनाये ।’

सोचा था अब आँसू न बहाऊँगी पर रोक न सकी । फिर आँखें छलछला आईं । नरेन्द्र ज़रा देर चुप रहा फिर बोला—‘भगवान ! सद्, तू क्या भगवान को मानती है ?’

इतनी बड़ी मुसीबत की घड़ी में उस दिन मुँह से सत्य निकल गया, बोली—‘मानती हूँ भैया ! भगवान हैं इसी भरोसे तो फिर लौटकर उनके पास जाना चाहती हूँ । नहीं तो गले में फंदा डाल कर यहीं कहीं न लटक जाती ! लौटने की बात मुँह पर लाती !’

नरेन्द्र ने कहा—‘मैं तो नहीं मानता ।’

चट से मैं बोल उठी—‘नहीं भैया, तुम भी एक दिन भगवान को मानोगे, देख लेना !’

‘जिस दिन मानूँगा, देखा जायगा !’

नरेन्द्र गम्भीर हो गया । मन ही मन वह क्या सोच रहा है, यह जानकर मैं विकल हो उठी । मुझसे देरी बढ़ाई नहीं हो रही थी, मैंने पूछा—‘मुझे कब दे आओगे नरेन्द्र भैया ?’

नरेन्द्र ने मुंह उठाकर धीरे से कहा—‘वह तुम्हें अब घर में नहीं रखेंगे।’
‘इसकी परवाह क्यों करते हो भैया ? रखें या न रखें, माफ तो कर ही देंगे।’

‘माफ ! घर में न रखा तो क्षमा और न क्षमा दोनों बराबर हैं, फिर तुम कहाँ जाओगी ? सारे गाँव में कितनी भद्द होगी, यह ज़रा सोच समझ कर देख लो।’

मैं बोली—‘उतनी दूर तक तुम क्यों सोचते हो भैया ! वैसी बात होगी तो वह स्वयं मेरा कोई न कोई उपाय कर देंगे।’

नरेन्द्र कुछ देर तक और चुप रहा। फिर बोला—‘तुम्हारी कोई न कोई व्यवस्था वह कर देंगे पर मेरा क्या होगा ?’

क्या जवाब दूँ सो नहीं सूझा। सिर्फ कहा—‘तुम्हें क्या डर है ?’

नरेन्द्र का चेहरा एक तो यों ही उतरा हुआ था, तिस पर फीकी हँसी हँसकर वह बोला—‘डर ? और कुछ नहीं। पाँच-सात साल के लिए जेल में चक्की पीसनी होगी ! अन्त में तुम इस तरह मुझे डुबा दोगी, यह जानता तो इस काम में हाथ नहीं डालता। तुमने भी कैसा खिलवाड़ किया है।’

मैं रोती हुई बोली—‘भैया, फिर मुझे क्या कहते हो, उनके चरणों में आत्म-निवेदन करके ही मैं जी सकूँगी।’

नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ, बोला—‘सिर्फ अपनी ही सूझती है तुम्हें ? मुझे ज़रा सोच लेने दो, बिना विचारे मैं दूसरा कदम नहीं उठा सकता !’

‘अरे ! क्या तुम अपने घर जाते हो ?’

‘हाँ।’

स्त्रीभू, जलन और निराशा के कारण मैं जमीन पर लोट लोटकर रोने लगी—‘तुम साथ न जाओ न सही, पर मेरे जाने का इन्तजाम कर दो; मैं अकेली भी जा सकती हूँ। नरेन्द्र भैया, उन्हीं का नाम लेकर कसम खाती हूँ, किसी का नाम कहीं नहीं बताऊँगी। किसी को मुसीबत में नहीं पड़ने दूँगी।’

पाप का सारा प्रायश्चित्त अकेली करूँगी। पैरों पड़ती हूँ भैया, मुझे और मत रोको, मेरा सर्वनाश मत करो'.....मैं रोये जा रही थी।

शिर उठाकर देखा, घर में कोई नहीं। वह चुपचाप बाहर निकल चुका था। मैं द्वार पर गई, बाहर से ताला लगा था। उड़िया महाराज बोला— 'चाभी लेकर बाबू चले गये हैं कल सवेरे आकर खोल देंगे।'।

भीतर आकर एक बार फिर लोटन कबूतर बन गई, रुलाई की हद नहीं। हे भगवान् ! मैंने कभी तुम्हें नहीं पुकारा, पर आज पुकारती हूँ। यह पुकार कितनी प्रबल है, यह मैं ही जानती हूँ। अपनी पापिन सन्तान को गति दो, तुम्हारे सिवा और कौन यहाँ है, जो सुनेगा हे भगवान् रक्षा करो !

फिर भी सात दिन कट गये। कैसे कटे, यह मैं नहीं बता सकती, बताने का सामर्थ्य ही नहीं। खैर ! तीसरे पहर में ऊपरी कमरे के जंगले पर मैं बैठी थी, ध्यान बगलवाली गली में था।

दत्तारों में छुट्टी हो गई थी। सारे दिन की मेहनत के बाद बाबू लोग जल्दी २ अपने घर जा रहे थे, उनमें से अधिकांश मामूली दर्जे के गृहस्थ थे। उनकी गृहस्थी का फोटो मेरी आँखों में नाचने लगा। घर की स्त्रियों में कौन कौन इन कमाऊ बाबुओं के लिए नाश्ता पानी जुटाने में तत्पर है, सो मैं कल्पना की आँखों से देखने लगी। मेरा दिल धड़कने लगा। मैंने देखा, वह भी दिन भर की हड़डी तोड़ मेहनत के बाद घर लौटे होंगे। कहाँ है बदलने की धोती; हाथ पैर पोछने का अर्गोछा, कहाँ है पानी ? पुकारने पर किसी ने सुना या नहीं सुना। मझले बाबू के लिए नाश्ते की जो तैयारी हुई है, उसी में से देवरानी ने बाद में मेरे पति को थोड़ा कुछ दे दिया; कभी वह भी भूल गई ! या, सिर्फ पानी पीकर मेरे पति मैली चादर वाले बिछौने पर लेट गये ! रात को दुपहर का सूखा फरहर भात, दिन की बची-खुची पतली दाल पड़ी होगी। न भी होगी। सबको दे दिवाकर थोड़ा दूध बच गया तो बच गया नहीं तो वह भला कुछ बोलेंगे थोड़ी ? आवश्यकता

से अधिक सजन, किसी को खरी-खोटी न सुनाने वाले, हृद से ज्यादा टंडे ! ऐसे व्यक्ति का जो हाल होता है.....

अरी पापिन इतना बड़ा पाप तुम्हें छोड़ कर दुनिया में क्या कोई कर सकता था ! मन हुआ जंगले के उन्हीं छड़ों से शिर टकरा कर सारा खेल खतम कर लूँ ।

बहुत देर तक मैं मानों होश-हवास में न रही । अचानक दरवाजे की सांकल खनखना उठी; मैंने चौंक कर सामने देखा तो नरेन्द्र और मुकिया । चटपट आँखें पोलू डालीं और विस्तरे पर आ बैठी । नरेन्द्र उस दिन का गया आज ही आया था । मेरा अन्तःकरण किधर लवलीन है यह नरेन्द्र अच्छी तरह समझ गया था इसीसे आता भी नहीं था । उसको धारणा हो गयी थी कि मुसीबत में अपने स्वामी के । वरुद्ध मैं उसके किसी काम न आऊँगी । उसको मेरी ओर से डर भी हो गया था और द्वेष भी । अन्दर आते ही नरेन्द्र ने कहा—‘तबियत इतना खराब थी तो मुझे बुलवा लेती ? तुम्हारा रसोइया मेरी जगह जानता है ।’

नौकरानी भाड़ू दे रही थी, वह भट से बैठ गई और बोली—‘तबियत क्यों नहीं खराब होगी । पानी पी पीकर कहीं पेट भरा है ! दोनों जून देखती हूँ, परोसी थाली जैसी की तैसी रखी रह जाती है । कभी-कभी तो छूती तक नहीं ।’

सुनकर दोनों अवाक रह गये ।

शाम के बाद नरेन्द्र चला गया अपने घर और मैं मुकिया को लेकर नीचे उतरी । पूछा—‘कैसे हैं वह ?’

मुकिया ने रो दिया । बोली—‘करम की गति कौन जाने ! ऐसा तुम्हारा घर वाला, और तुम उनका घर न सम्भाल सको ?’

‘तू ही तो बीच में पड़ा थी ।’

मुकिया आँसू पोंछकर बोली—‘अपने अंदर का हाल तुमसे क्या बताऊँ ? वड़े बाबू को छोड़कर सभी यही जानते हैं कि तुम आग लगने की खबर पाकर

रंज के मारे रातोंरात मायके चली गई हो। कहकर नहीं गई, इससे तुम्हारी मास भी सूजी हुई है और बड़े बाबू से बोलना चालना बन्द कर दिया है। कितनी बदमाश है बहिन, यह औरत ! बड़े बाबू को जो तकलीफ दे रही है ओह उससे पत्थर भी पिघल जायगा यह जानती तो क्या मास से तुमने भगड़ा ठाना होता ?

मैं कहने जा रही थी—भगड़ा ! भगड़ना तो हमेशा के लिए छूट गया ! लेकिन दम अटक गया बोल न सकी।

आज मुकिया से ही मालूम हुआ कि मायके में जले घर की मरम्मत हो रही है, रुपया उन्हींने दिया है। शायद इसीलिए उन्हें मेरे गहने गिरवी रखने पड़े। बोली—‘मुक्की, कहो, सब कह डालो। जितनी दिलतोड़ खबरें हो सब सुना डालो। एक एक कर सुनाना। मेरी कसम तुम्हें। ज़रा भी मत छिपाना।

मुकिया बोली—‘इस मकान का पता वह जानते हैं।’ मैं सिहर उठी ‘सो कैसे ?’

‘महीना भर पहले जब यह मकान तुम्हारे लिए भाड़े पर लिया गया था, तभी से मैं जानती हूँ।’

‘फिर ?’

‘एक दिन नदी किनारे उन्होंने खुद मुझे छिपकर नरेन्द्र बाबू से बातें करते देखा था।’

‘फिर ?’

‘ब्राह्मण के पैर छूते समय झूठ न बोल सकी, आने के दिन इस मकान का पता मैंने उन्हें बता दिया।’

मैं असुख होकर मुकिया की गोद में ढेर हो गई, आँखें मिच गई थी।

कितनी देर बाद मुकिया बोली—‘बहू !’

‘क्या है मुक्की ?’

‘अगर बड़े बाबू खुद लेने के लिए आ जायें !’

मैं जोर लगाकर उठ बैठी और मुकिया के मुँह पर हाथ धर दिया—‘नहीं री नहीं, ऐसा मत कह, मुझे ज्ञानपूर्वक अपनी तकलीफें सहने दे, पगली मत बना, पाप का प्रायश्चित्त करने दे, इसमें अड़गा मत डाल ।’

मुकिया जबर्दस्ती अपना मुँह छुड़ाकर बोली—‘अकेले तुम्हीं को प्रायश्चित्त थोड़े करना पड़ेगा ? अपना पाप क्या मैं ही रुपयों से तौल करके घर में रख सकूँगी ?’

मैं इसका क्या जवाब देती ? आँखें मूँद कर लेट गई । मन ही मन बोली—घरती अभी भी घरती ही बनी हुई है । आमाशकुम्भ की बात सुनने भर को है, उसे खिलते आज तक किसी ने नहीं देखा । एकाध घंटा के बाद मुकिया खाकर लौटी तो रात के दश बज चुके थे । अन्दर आते ही बोली—‘शिर ठक लो बहू, बड़े बाबू आ रहे हैं’—कहते ही फुर्र हो गई ।

इतनी रात को । कपड़े संभाल कर उठ बैठी । देखा, दरवाजे के पास खड़े हैं पतिदेव ।

बोले—‘तुम्हें जरा भी कैफियत देनी नहीं होगी । मैं जानता हूँ । तुम मेरी ही हो । चलो, घर चले ।’

मन ही मन मैं बोली—हे भगवान ! इतना दिया तो यह भी दो कि उन दोनों चरण-कमलों पर मत्था टेकते समय मेरी होश दुरुस्त रहे ।



एकादशी भगवत्

कालीदह गाँव ब्राह्मणों की बस्ती थी। गोपाल मुकर्जी उसी के वाशिन्दा थे। उनके लड़के का नाम था अपूर्व। बचपन से ही हमउम्र लड़कों का सरदार था।

पाँच छः साल कलकत्ता में रह कर वह घर लौटा बी० ए० (ऑनर्स) होकर। गाँव भर में जिधर देखो उसी की चर्चा, उसी का गुणगान। गाँव में ही टूटा-पुराना हाई स्कूल था, अपूर्व के साथी-संगी उसी में अपनी पढ़ाई खतम करके साक्षर और शिक्षित बने थे; संध्यावंदन छोड़ कर शिर के बाल फैशन से कटाने लगे थे, चोटी का पता नहीं। लेकिन कलकत्ता में रहकर बी० ए० पास यह छोकरा अपने साथियों के विस्मय का पात्र हो गया था; बाल बराबर कटे थे, शिर के पीछे चोटी का गुच्छा लटक रहा था। बड़े बूढ़ों तक को आश्चर्य हुआ।

बात यह थी कि अपने कलकत्ता प्रवास में अपूर्व ज्ञानियों के व्याख्यान सुन कर, सभा-समितियों में भाग लेकर सनातन धर्म के प्रति बहुत ही श्रद्धालु हो गया था। अब अपने साथियों में खुलकर यही प्रचार करने लगा कि हिन्दू धर्म से बढ़कर और कोई धर्म संसार में है ही नहीं; इसकी कौन सी बात है जो युक्तिसंगत न हो। शिखा की उपयोगिता, स्वास्थ्य रक्षा के लिए संध्यावंदन की आवश्यकता, शाकाहार तथा फलाहार का रसायनिक महत्व आदि बहुत सारी बातों की तत्वबोधिनी व्याख्या सुन कर छोटी बड़ी सभी उमर के लोग अपूर्व बाबू पर मुग्ध हो गए। फल यह हुआ कि शिखा-सूत्र से आरंभ करके गायत्री, संध्या, एकादशी, प्रदोष व्रत (त्रयोदशी) पूर्णिमा गंगास्नान आदि

धार्मिक अवसरों पर गाँव के लड़कों ने श्रद्धा-भक्ति में बूढ़ी औरतों को मात करना शुरू कर दिया। किशोरों और नवयुवकों में धर्मोद्धार और देशोद्धार को लेकर एक प्रकार की उथल-पुथल मच गई। बुढ़ों ने कहना शुरू किया—‘हाँ भाई, गाँव में कोई आदमी है, तो गोपाल मुकजी। जैसी लक्ष्मी महारानी की कृपा है, लड़का भी वैसा मिला है। नहीं तो इतना अंग्रेजी पढ़कर ऐसा धरम करम वाला कहाँ कोई दूसरा लड़का नजर आता है !’

हिन्दू धर्म प्रचारिणी, धूम-पान निवारिणी, अत्याचार विरोधिनी यह तीन समितियाँ थी, जिनका स्थापन अपूर्व ने किया था। आन्दोलन इतना जागरूक हो उठा कि गाँव के गरीब-गुर्वा भी घबड़ा उठे। पचकौड़ी ने एक दिन ताड़ी पी कर अपनी औरत को पीट दिया था, अपूर्व के सिपाहियों ने सुना तो पकड़ कर बुढ़े की ऐसी मरम्मत की कि राम का नाम लो। दूसरे ही दिन पचकौड़ी की औरत पति को साथ लेकर भाग गई बाप के घर। भगू एक रात को मछली मार कर घर की ओर जा रहा था, गाँजे की भोंक में कवि विद्यासुन्दर के मालिनी छन्द गाता जा रहा था; बाँभन टोली का अविनाश इससे गुस्सा हो गया। उसने बेचारे की नाक से खून बहाकर ही छोड़ा। दुर्गा डोम का छोकरा चौदह-पंद्रह साल की उमर, बीड़ी पीता हुआ मैदान की ओर जा रहा था। अपूर्व के दल का कोई लड़का यह देखकर इतना नाराज़ हुआ कि उस अभागो छोकरे की पीठ को उसी की अधजली बीड़ी से दाग दिया। इसी तरह अपूर्व की हिन्दू धर्म प्रचारिणी धूमपान निवारिणी और अत्याचार विरोधिनी समितियों ने अपना अपना काम जोरों से चलाया; फल भी खूब फला।

अब अपूर्व का ध्यान गया गाँव वालों की मानसिक उन्नति की ओर। स्कूल की लाइब्रेरी में सिर्फ पाँच-सात किताबें थी। दो-एक फटे-पुराने नक्शे भी टंगे थे। लाइब्रेरी की इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व हेडमास्टर पर डाल कर अपूर्व खुद तैयार हो गया—पुस्तकालय की उन्नति कैसे होती है, सो करके वह दिखला देगा। उसी की निगरानी में चन्दाबही, नियमावली, पुस्तक सूची, सम्मति-पुस्तिका आदि तैयार हो गईं। गाँव वालों ने अभी तक

घर्मे प्रचार कार्य को किसी तरह बर्दाश्त किया था, लेकिन अब पैसे का सबाल सामने आया तो भले लोगों ने मुंह छिपाना शुरू कर दिया। बगल में बही दाबे जब गाँव वाले किसी लड़के को आते देखते तो बैठक की खिड़की और दरवाजा अन्दर से लगा लेते। घर्मे प्रचार और अत्याचार विरोध और धूमपान निवारण—इसके लिए जितनी सफलता मिली थी, उसका सौवाँ हिस्सा भी इसमें नहीं मिला। क्या करे, क्या न करे—अपूर्व इसी सोच में था कि एक बड़ी सूराख नजर आई। स्कूल के पास ही एक उजाड़ सी डीह पड़ी थी, भीतें जली हुईं। खंडहर की स्थिति में। अपूर्व का ध्यान उधर खिंचा। पूछताछ करने पर पता लगा, एकादशी भगत की डीह है। भगत ने दस साल पहले कुछ ऐसा खराब काम किया था कि गाँव वालों ने उसका नाई-धोबी, कहार-कुम्हार सभी बन्द कर दिया था। उसे गाँव छोड़ना पड़ा। तभी से डीह खाली है। आजकल भगत वहाँ से दो कोस उत्तर बरईपुर में रहता है। आदि निवासी वह ढाका का है, जाति का कुमीर। असली नाम उसका क्या है, पता नहीं। अभी भगत जी एकादशी नाम से ही मशहूर हैं। अपूर्व ताल ठोककर बोला—ढाका का कुमीर ! सामाजिक दुराचार ! तब तो साले पर कसकर चन्दा बैठाना चाहिए। देगा नहीं ? बरईपुर क्या दूसरे मुल्क में है, वहाँ भी साले का नाई-धोबी बन्द कर देंगे ! बरईपुर का ज़मींदार दीदी का ममिया ससुर होता है।

नये शिकार की टोह पाकर लड़कों का मन थिरक उठा। दाताओं की सूची में भगत का नाम लिखा गया, उसके पीछे एक बड़ी सी रकम डाल दी गई। जायगा कहाँ, साले को रुपया देना होगा नहीं तो अपूर्व अपनी बहन के ममिया ससुर को उकसाकर भगत का सामाजिक बहिष्कार करवा देगा। पंडित रसिकलाल ने जब यह सुना तो सीधे अपूर्व के पास आये; पेंच कस गये—बेटा मोटी रकम न देगा तो उसकी खैर नहीं। अब कैसे भगत अपना डीह बचाता है, देखे। कालीदह की अपनी इस वासभूमि पर भगत की कितनी ममता है, यह बात पंडित रसिकलाल अच्छी तरह जानते थे। क्योंकि दो-तीन साल पहले भगत की यह ज़मीन ख़रीदने के लिए पंडित ने तिकड़म भिड़ाई थी। उनका

बाग पास में ही पड़ता था, चाहते थे कि भगत का डीह मिल जाय तो अपने बगीचे को जग और बढ़ा लें । पंडित का प्रस्ताव जब भगत के सामने आया तो निहायत शरीफ की तरह कानों में उँगली डालकर दाँतों से जोभ दबाकर वह बोला—नहीं महाराज, बिना भर जमीन, इसके बदले मैं ब्राह्मण से दाम लूँगा ! नहीं नहीं यह मुझसे नहीं होगा । ब्राह्मणों की सेवा में यह चीज लगे तो मेरा अहोभाग्य !

पंडित रसिकलाल ने जब भगत के मुँह से इतना सुना तो गदगद हो गए । कोटि कोटि आशीर्वाद दिये, देवताओं, साधु-सन्तों और ब्राह्मणों के प्रति भगत की जो श्रद्धा-भक्ति थी, उसका गुणगान किया । पंडित जब यह सब कर चुके तो उस गुरुघटाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—लेकिन पंडित जी महाराज, भाग्य ऐसा विगड़ा है कि सात पुशतों का डीह छोड़ना मेरे लिए असंभव है । पिता ने मरते समय इस माथे पर हाथ फेरते हुए कहा था—बेटा, भूखों मरना ठीक, लेकिन डीह छोड़ना ठीक नहीं !..... पंडित रसिकलाल मानों ताड़ पर चढ़ाकर धकेल दिये गये हों, धड़ाम से गिरे । आशा पर पानी फिर गया । वह उन्हें भूला नहीं था । अपूर्व को उत्साहित करना उन्होंने आवश्यक समझा ।

पाँच-छः दिन बाद, अपूर्व की सेना एक दिन सवेरे दो कोस का मंजिल तय करके भगत के यहाँ जा धमकी । मिट्टी का घर, साफ़ सुथरा । देखते ही मन लुभा जाय ऐसा । अपूर्वने या उसके दल के किसी दूसरे लड़के ने इससे पहले भगत को देखा नहीं था; चंडीमंडप* के अन्दर दाखिल होते ही उनका मन

*चंडीमंडप—बंगाल के गाँव गाँव में एक पन्चायती घर हुआ करता है जिसमें दुर्गा पूजा, (कुआर महीने में) ग्रामीण भगइों के फैसले पन्चों की बैठक आदि हुआ करते हैं । यह बहुधा चौमुहा दालान की शकल में होता है यानी चार कोनों पर शीशम या साखू के चार खम्भों के सहारे दूर से चतुष्कोण स्तूप की तरह दिखाई पड़ने वाला । बीच में धरन नहीं होती । जमीन्दार और

विद्रोह कर उठा। आदमी यह चाहे कहीं का हो, कैसा भी हो, किन्तु लायब्रेरी के सम्बन्ध में सड़ा त्रैगन जितना भी काम नहीं आया ! एकादशी भगत का पेशा था साहूकारी—सूद पर रुपया देना, गहने गिरवी लेना, अमानत रखे रहना। साठ साल की उमर, सारा देह जीर्ण-शीर्ण, रुखा-सूखा। कंठ में तुलसी की माला, कई छुई, दाढ़ी-मूँछ साफ। चेहरा देखने से मालूम नहीं होता कि अन्दर बूंद भर भी रस होगा। यह आदमी महाजन बना बैठा है। अपनी सारी मनुष्यता को निचोड़ कर विसर्जित कर चुकने के बाद दूसरे मनुष्यों को शोषित करने के लिए तैयार बैठा है ! गन्ना भी ऐसा ही करता है। कोल्हू में अपना सारा रस निचुड़ा कर वह सिट्ठा बनता है फिर सिट्ठों की शकल में उसी को ईंघन बनाकर उससे उसी का रस औँटा जाता है ! अपूर्व भगत का चेहरा देखकर मन ही मन बस कर गया। चंडीमंडप में चटाई बिछी थी, बीच में एकादसी बैठा था। सामने काठ की छोटी सी सन्दूकची थी, एक तरफ हिसाब के कागजपत्र तहियाकर रखे थे। पास में एक बूढ़ा गुमाश्ता बैठा था। नगी देह, जनेऊ लटकाये वह स्लेट पर सूद का हिसाब जोड़ रहा था। मंडप में आगे-पीछे दायें-बायें बरामदे पर, खंभों की आड़ में लोग बैठे थे। भिन्न-भिन्न आय; तरह तरह का चेहरा-मोहरा, औरतें भी थीं, किसी का मुँह खिला हुआ न था, हतप्रभ और उदास। कोई कर्ज लेने आया था, तो कोई व्याज चुकाने; कोई मुहलत लेने। मुँह देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि कोई कर्ज भी चुकाने आया होगा।

भले लोगों के लड़कों का एकाएक सामने खड़ा पाकर भगत को आश्चर्य हुआ, वह गौर से उनकी ओर देख रहा था। स्लेट एक ओर रखकर गुमाश्ता बोला—‘आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ?’

साहूकार व्यक्तिगत रूप में भी चंडीमंडप बनाते हैं। यह स्थान ग्रामीणों के लिए एक प्रकार से क्लब का तरह होता है। जहाँ वे उठते-बैठते, चौपड़-शतरंज खेलते, आपस की कहते-सुनते, रामायण होती, कथा-पुरान होते।

अपूर्व ने कहा—‘कालीदह से ।’

‘बाबू, आप लोग कौन हैं ?’

‘हम सभी ब्राह्मण हैं ।’

भगत हड़बड़ाकर उठा, लम्बी गरदन झुकाकर प्रणाम किया और बोला—‘आइये बैठिये ।’

जब सब आगन्तुक बैठ गये तब भगत खुद बैठा ।

अपूर्व ने लाइब्रेरी की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ कहा, चन्दे की बात उठाना ही चाहता था कि देखा—भगत की गरदन दूसरी ओर घूम गई है । उस खंभे की आड़ में जो औरत बैठी थी, उसी को संबोधन करके महाजन कहने लगा—‘तुम पागल तो नहीं हो गई हो हारू की माँ ? कुल मिलाकर सात रुपये दो आने व्याज की रकम हुए उसमें से भी दो आने तुम छुड़ा ही लोगी ? इससे तो अच्छा यही होता कि गले पर खड़ी हो जाती और मैं भी निकालकर टें बोल देता, क्यों क्या राय है ?’

इसके बाद दोनों तरफ से ऐसी खींचातानी शुरू हुई मानों महाजन और असामी दोनों का जीवन इस दुश्मनी पर निर्भर हो । उधर हारू की माँ भी दड़ थी तो इधर भगत भी अटल था । को बड़ छोट कहत अपराधू ?

अपूर्व को देरी खल रही थी, उसने बीच ही में कहा—‘हमारी लाइब्रेरी...’

भगत ने इधर घूमकर कहा—‘जी..... हाँ रे नफर मुझे डुबा ही डालेगा न ? दो रुपये कबके ले गया सो तो अभी तक पटे नहीं, किस मुँह से एक रुपया और माँगने आया है, जरा सुनूँ तो ? व्याज-याज कुछ लाया है ?’

टेंट में से नफर ने इकत्री निकाली । देखते ही महाजन की आँखें लाल हो गईं । उसने कहा—‘तीन मास तो हो गये ? ला, दो पैसे और निकाल ।’

हाथ जोड़ कर नफर ने कहा—‘दोहाई माई बाप की यह भी उधार लाया हूँ ! वही बहरी बुढ़िया, देती ही नहीं थी । लाख मिन्नतों की, तब जाकर कहीं पसीजी । दो ही पैसा न रह गया आपका हजूर ? अगले हाट के रोज दे जाऊंगा ।’

भगत ने गर्दन बढ़ाकर देखा, बोला—‘देखू तो भला, तेरे उस तरफ का टेंट ?’

नफर ने बाएँ तरफ का टेंट दिखलाकर अभिमानपूर्वक कहा—‘दो पैसा के लिए भूठ बोलूँगा आपके सामने हज़ूर ? जिस साले ने पैसा छिपा रखा हो उसके मुँह में कीड़ा पड़े.....थू: !’

महाजन ने कड़ी निगाह कर असामी से कहा—‘हाँ रे हाँ, चार पैसा उधार मिला, दो पैसा और नहीं मिलता ?’

नफर खिसिया गया—‘बाप रे बाप ! इतना कहा तो भो यकीन नहीं होता है मालिक ? खुदा कसम, मुँह में कीड़ा पड़े अगर मैं सच न कहता होऊँ...’

अपूर्व भभक उठा, वह और सुनने को तैयार नहीं था बोला—‘तुम भी खूब रहे महाजन छि: !’

भगत सिर्फ नजर फेरकर रह गया, कुछ कहा नहीं। पराण बागदी उधर से निकला, कहीं जा रहा था; हाथ हिलाकर महाजन ने उसे बुलाया—‘अरे ओ पराण ! जरा इधर तो आना, नफर की लंगोट खोलकर देखो, कहीं कुछ बंधा तो नहीं है ?’

पराण के नज़दीक आते ही नफर ने अपनी लंगोट के खूट में बंधा अधन्ना निकालकर महाजन के सामने फेंक दिया। इस बे-अदबी से महाजन को ज़रा भी रंज नहीं हुआ। गंभीर भाव से उसने छहों पैसे उठा कर, संदूकची में डाल दिये। गुमाशते से कहा—‘घोषाल बाबू, नफर के नाम पर व्याज की वसूली लिख लीजिए। हाँ रे, और एक रुपया लेकर क्या करेगा ?’

नफर ने कहा—‘जरूरत न होती, तो आता ही क्यों ?’

महाजन ने कहा—‘तो ले यह रही अठनो ! रुपया लेकर जायगा और फिज़ूल में उड़ा डालेगा !’

उसके बाद खीच-तान करके नफर को बारह आने पैसे कर्ज़ मिले। वह चला गया।

देर बहुत हो गई थी। अपूर्व के साथी अनाथ ने चन्दे की बही महाजन के सामने रख दी और कहा—‘देना हो, सो दे दीजिये, बड़ी देर हो गई।’

भगत ने बही उठा ली, पन्द्रह मिनट तक उसे उलट-पुलट कर देखा। आखिर में एक साँस खींचकर बही उसने लौटा दी—‘मैं बूढ़ा आदमी ठहरा मुझसे भी चन्दा लेंगे?’

अपूर्व ने मुश्किल से अपने को संभाला, गुस्सा बहुत ही आ रहा था। कहा—‘बड़े-बूढ़े रुपया नहीं देंगे तो और कौन देगा, लड़के! उनको कहाँ से मिलेगा?’

बुड़दे ने उस बात का जवाब नहीं दिया। गम्भीर भाव से गरदन हिलाते हुए बोला—‘पच्चीस साल से तो स्कूल है। कहाँ, किसी ने अभी तक किताब-उताव इकट्ठा करने की बात उठाई थी? अच्छा, बाबू, जो हो, काम बुरा नहीं। तुम लोग ठीक ही करते हो। हमारे अपने बच्चे पढ़ें या न पढ़ें, गाँव के लड़के तो पढ़ेंगे न! कहो घोषाल बाबू, तुम्हारा क्या विचार है?’

घोषाल ने गरदन हिलाकर क्या कहा, अपूर्व की समझ में नहीं आया। भगत ने फिर कहा—‘ठीक तो है, किसी दिन और आएँ। चार आने मिलेंगे। बोलो घोषाल, इससे कम तो भला क्या देना। लड़के हैं, इतनी दूर से दौड़े आये हैं; नाम प्रतिष्ठा है तभी तो? इसी गाँव में और भी तो हैं, कहाँ किसी के पास कोई आता है? कहो घोषाल तुम्हारी क्या राय है?’

क्रोध के आवेश में अपूर्व से बोला न गया। अनाथ ने कहा—‘तो चवन्नी के खातिर हम इतनी दूर आये हैं? और सो भी किसी दूसरे दिन आने से मिलेंगे?’

महाजन चबा चबाकर मुंह से एक एक शब्द निकालते हुए बोला—‘बाबू, देख तो लिया आपने, क्या हाल है पैसे का! हक का पैसा सिर्फ़ छः वसूल करने में कितनी बेअदबी का सामना करना पड़ा है। पाट की बिक्री होने से पहले चन्दा देने की सुविधा नहीं होगी।’

क्रोध के मारे अप्रव के होंठ फड़कने लगे । उसने कहा—‘होगी क्यों नहीं, यहाँ भी तुम्हारा धोबी-नाई बन्द होगा, तब मालूम पड़ेगा । देखो तो कैसा वैष्णव बना हुआ है ? भगत कहीं का । जाति-बिरादरी छोड़कर जिन बन गया है जिन ! अच्छा !’

विपिन उठकर खड़ा हुआ, उसने अपनी तर्जनी हिलाते हुए कहा—‘बरईपुर के राखाल बाबू हमारे रिश्तेदार होते हैं, याद रखना ।’

बुढ़्ढा एकाएक इस अघटित घटना से भौचक्का हो गया । पराये गाँव के लड़के, उनकी इतनी नाराज़ी का क्या कारण हो सकता है !

अपूर्व बोला—‘गरीबों का खून चूस कर तुम महाजन बने हो, सब कसर निकाल लूँगा ।’ नफर अभी तक बैठा था । उसकी लंगोट के खूँट से बंधे दो पैसे निकल गए थे; वह मन ही मन जल-भुन रहा था । बोला—‘बाबू बिल्कुल ठीक ही तो कहते हैं आप लोग । यह भगत नहीं, पिसाच है, पिसाच ! देखा कसाई ने मेरे पैसे कैसे निकाले !’

बुढ़्ढे का अपमान जो हो रहा था, उससे सभी असामी मन ही मन खुश हो रहे थे । उनकी प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर विपिन को काफी प्रोत्साहन मिला । वह आँख मारकर बोल उठा—‘अरे तुम सब क्या जानो भीतर की बात ! हमारे गाँव का आदमी ठहरा, जितना हम जानेंगे उतना और कौन जानेगा ? क्यों बे बुढ़्ढे, हमारे गाँव में तुम्हारा नाई-धोबी क्यों रोक दिया गया था ?’

बात पुरानी हो गई थी । जानते सभी थे । एकादशी भगत *सद्गोप का लड़का था । जन्मजात वैष्णव नहीं, उसके और कोई नहीं था, थी एक मात्र छोटी बहन, सौतेली और विधवा । वह एक बार प्रलोभन में पड़ कर भाग गई थी, एकादशी ने बड़ी मुश्किल से उसे ढूँढ़ निकाला था । गाँव के लोग उस पर बेहद रंज हो गये । फिर भी माँ-बाप-विहीना इस सौतेली बहन को

*ग्वालियों की एक जाति ।

छोड़ने के लिए वह राजी नहीं हुआ। दुनिया में उसका और कोई नहीं था। बचपन से उसने अपनी बहन को गोदी में लेकर, पीठपर लादकर, कन्धे पर चढ़ा, पाल-पोसकर बड़ी किया था। धूमधाम से उसकी शादी की, चढ़ती जवानी में वह विधवा हो गई तो लौट कर फिर भाई की गृहस्थी में आ गई। वयस और बुद्धि का दोष—बहन के पतन पर बूढ़ा कई दिन रोया था। रात दिन एक करके गाँव-गाँव नगर-नगर अपनी बहन को खोजा, जब मिली तो आदरपूर्वक उसे घर ले आया। गाँव वालों का कठोर अनुशासन मानकर अपनी लज्जित, पश्चात्ताप-तप्त अभागी बहन को वह फिर घर से बाहर निकाल देता और प्रार्थश्चित कर लेता तो समाज से उसे माफी मिल जाती। लेकिन इतनी बड़ी निदुराई के लिए उसका हृदय तैयार न हुआ। बहन को छोड़ना उसे मंजूर नहीं था। गाँव वालों ने ढंड दिया, नाई-धोबी, तेली-चमार सब बन्द। एकादशी के सामने और कोई उपाय न था, वह मेख लेकर वैष्णव हो गया। इसी बरईपुर में आकर बस गया।

यह कोई पुराना इतिहास नहीं था, जो किसी को मालूम न हो, सभी जानते थे। तो भी किसी एक की कलंक कथा किसी दूसरे के मुँह से सुनने में जो आनन्द आता है उसके लिए सभी उत्कंठित हो उठे। भगत खुद शरम और डर के मारे पानी-पानी हो गया। अपने लिए नहीं, बहन के लिए। बुढ़ा भलीभाँति जानता था कि अपने प्रथम यौवन के अपराध का घाव बेचारी गौरी के कलेजे में अभी तक मौजूद है, हरा और गहरा। जरा-सा इशारा, थोड़ा-सा व्यंग्य उस पर लाल मिर्च की बुकनी का काम कर सकता है। इसी आशंका से भगत का चेहरा फीका पड़ रहा था। उसके मुँह से कुछ निकल नहीं रहा था। बुढ़े की गरीब आँखें बहुत ही मर्मबेधी हो चठी थीं। किसी ने उधर ध्यान नहीं दिया था परन्तु अपूर्व ने सहसा यह अनुभव किया, उसे बहुत ही विस्मय हुआ।

विपिन कहने लगा—“हम भिखारी नहीं हैं जो इतनी कड़ी धूप में दो कोस चलके आये हैं चवन्नी के लिए तुम्हारे आगे हाथ फैलाने। सो भी आज नहीं,

पटुआ बिकेगा, तब मिलेगी। ओह, महाजन बाबू की मेहरबानी तो देखो ! गरीबों का खून चूसकर सेठ बन रहे हो, सोचा होगा, जोंक के बदन में जोंक नहीं लगता। मैं यहाँ भी तुम्हारे नाक में कौड़ी न बंधवाऊँ तो मेरा नाम विपिन भट्टाचार्य नहीं !'

‘चार पैसे हाथ में आते ही छोटी जातवाले आँख कान को पेन्शन दे बैठते हैं। चलो अपूर्व, चले’। देखा जायगा’—विपिन ने अपूर्व का हाथ खींचा।

ग्यारह बज रहे थे। कड़ी धूप थी। इतनी दूर चलकर जाने से अपूर्व को प्यास लग गई थी। ज़रा देर पहले उसने नौकर को पानी लाने को कहा था। बाद, इन झमेलों में प्यास भी उसे भूल चुकी थी। लेकिन एक हाथ में पानी का गिलास, दूसरे में रिकाबी पर चार बतासे लिये, सत्ताईस-अठ्ठाईस साल की एक विधवा पास का किवाड़ धकेलकर अन्दर आई तो अपूर्व को फिर प्यास मालूम हुई। देखने से गौरी छोटी जात की औरत नहीं मालूम होती। बिन किनारी की साड़ी, तसर की। नहाकर मानो पूजा-पाठ पर बैठी थी, ब्राह्मण को पीने के लिए पानी चाहिए—नौकर ने जाकर कहा था। वह स्वयम् पानी लेकर बाहर निकली थी। बोली—‘आपमें से किसी को प्यास लगी थी न ?’

विपिन ने कहा—‘तुम्हारे हाथ का हम पानी पिये’ ? रेशम की पवित्र साड़ी पहनकर आई हो इसीलिए ?.....अपूर्व, आप ही हैं वह विद्याधरी जिनका गुणगान रात-दिन सुनते रहते हो।’

पलक मारते ही उस स्त्री के हाथ से रिकाबी गिर पड़ी, भनभन भन उसकी आँखों में असीम लज्जा का आभास पाकर अपूर्व खुद ही शर्मिन्दा हो गया। क्रोधपूर्वक उसने विपिन के बदन में एक उँगली गड़ाकर कहा—‘होश है कि नहीं ? क्या बक रहे हो, बन्दर कहीं के !’

विपिन देहात का आदमी है, भगड़ा करते समय स्त्री-पुरुष का ज्ञान रखे तो फिर बहादुरी कैसी। अपूर्व की कुरेदन पाकर वह और उग्र हो उठा आँखें लाल-लाल करके कहना शुरू किया—‘क्यों ? क्या मैं झूठ कह रहा हूँ

इतनी बड़ी गुस्ताखी कि वह ब्राह्मण के लड़के को अपने हाथ का पानी पिला देगी । मैं बीच बाजार में हँडिया पटक दूँगा !'

दलील से काम नहीं चलेगा, अपूर्व की समझ में यह बात आ गई कि ज्यादा कहने से विपिन अधिक से अधिक उत्तेजित होता जायगा । प्रकाश्य रूप में उसने कहा—'विपिन तुम नाहक ही झगड़ रहे हो, पानी लाने मैंने कहा था; चलो, देर हुई, हम घर चलो !'

गौरी ने रिक़ाबी को उठा लिया, नीची निगाह, संयत चेहरा लिए दरवाजा ठेलकर वह आड़ में हो गई । वहीं से बोली—'दादा, यह लोग चन्दा के लिए आये थे न ? तुमने दे दिया ।'

भगत इतनी देर तक भक्कू बनकर बैठा था, बहन का बोल सुनकर नींद टूटी । बोला—'देता हूँ बहन !'

अपूर्व की तरफ देखकर बुड्दे ने हाथ जोड़ दिये—'बाबू, मेहरबानी करे', मैं गरीब हूँ । चार आने से ज्यादा देना मेरे लिए पहाड़ होगा ।'

विपिन भौंहे चढ़ाकर कुछ और कहने ही वाला था कि अपूर्व ने इशारा किया—'नहीं । लेकिन इतनी आँधी तूफान के बाद चार आने का चन्दा लेते हुए उसे भी घृणा हो रही थी । अपने को सम्भालकर उसने कहा—'रहने दो भगत तुम्हें कुछ नहीं देना पड़ेगा ।'

एकादशी ने इसे नाराज़ी समझा । लम्बी सांस खींच कर वह बोला—'कलजुग है कलजुग ! बाग-बगीचे में कोई किसी को अकेला पावे तो धर दबाए ! लिखो घोषाल बाबू, पाँच गन्डा लिखो । और उपाय ही क्या है !...'

भगत ने एक बार और गहरी साँस ली । उसका मुँह देखकर अपूर्व से नहीं रहा गया, वह हँस पड़ा । व्याज के सहारे अपनी जीविका चलाने वाला ऐसा अजीब है यह आदमी ! चार आना और पाँच आना के बीच इसके लिए कितना बढ़ा गढ़ा है । अपूर्व ने कहा—'रहने दो भगत तुम्हें कुछ नहीं देना डेगा, चार-पाँच आना चन्दा हम नहीं लिया करते ! लो, हम चले ।'

अपूर्व के हृदय में अभी तक कुछ आशा थी। पाँच आना चन्दा के प्रतिवाद स्वरूप, किवाड़ की ओट से बहन अपने भाई को कुछ जरूर कहेगी। उसकी साड़ी का जरा सा पल्ला किवाड़ की आड़ से नज़र आ रहा था, लेकिन कहा तो कुछ नहीं ! जाते जाते अपूर्व ने मनमें कहा—छीः, कितने नीच हैं ये लोग ! पाँच आने से अधिक भी दान दिया जाता है, इन्हें इस बात की धारणा तक नहीं। पैसा ही इनकी जान है, पैसा ही इड्डो और पैसा ही मांस; पैसे के लिए कौन कुकर्म है, जो ये न करते हों !

अपूर्व साथियों के सहित उठ कर खड़ा हुआ कि इतने में अनाथ की नज़र पड़ी एक लड़के पर, नौ-दस साल का रहा होगा। लड़के के गले में उतरी* थी। बाप या कोई और मरा होगा। उसकी विधवा माँ ओसारे पर खम्भे की आड़ में बैठी थी। अनाथ ने अचरज से पूछा—‘पुतू, तुम यहाँ कहाँ ?’

पुतू ने उंगली उठाकर कहा—‘माँ बैठी है।’

माँ बोली—‘हमारे कुछ रुपये हैं इनके यहाँ।’

उस विधवा का संकेत भगत की ओर था। नये मामले की गंध पाकर सभी उत्सुक हुए। आखिर क्या होता है, यह जानने के लिए अपूर्व विपिन का हाथ पकड़कर बैठ गया, उसे प्यास लगी थी तो भी कौतूहल के मारे रुक गया।

एकादशी ने पूछा—‘क्या नाम है बच्चा ? घर कहाँ है ?’ लड़के ने कहा—‘नाम है मेरा शशधर, घर वहीं है जहाँ के ये लोग हैं, कालीदह।’

‘बाप का नाम ?’

* किसी के मरने पर जो आग देता है उसके गले में जनेऊ के साथ कपड़े का लीरा भी डाल दिया जाता है। उसे उतरी कहते हैं, यह ‘उत्तरीय’ शब्द का संक्षिप्त रूप है। जब तक श्राद्ध का क्रिया-कर्म चलता रहता है तभी तक उसे पहने रहते हैं। बाद में तोड़ डालते हैं।

लड़के की तरफ से जवाब दिया अनाथ ने—‘बाप इसका मर गया । बहु दिन हुए । इसके दादा रामलोचन चटर्जी अपने पुत्र की मृत्यु के बाद घर निकल गये थे; सात साल बाद अभी दो तीन महीने पहले लौट आये थे । पर इन लोगों का घर जल गया । बूढ़ा गया था आग बुताने, लपटों की लपेट आ गया । और तो कोई है नहीं, यही पोता श्राद्ध करेगा ।’

घटना का विवरण सुनकर सभी ने दुख जाहिर किया, चुप रहा तो भगत ही । ज़रा देर बाद उसने पूछा—‘रुपया का चिट्ठा-उट्टा है, जाओ, से पूछो ।’

लड़का पूछ आया । बतलाया—‘कागज-पत्र कुछ नहीं बचा, सब जलकर खाक हो गया ।’

भगत ने पूछा—‘कितने होंगे ?’

इस बार विधवा स्वयं ज़रा आगे आई, शिर का कपड़ा ठीक करके जवाब दिया—‘पुत्तू के बाबा मरते समय कह गये हैं, पाँच सौ रुपये जमा रखकर न तोर्ययात्रा में निकले थे । भाई हम ठहरे गरीब, सारी रकम न भी दो, भी माँगती हूँ, कुछ तो दो ।’

विधवा सिसक सिसककर रोने लगी । घोषाल महाशय इतनी देर लिख रहे थे, अब उन्होंने पूछा—‘कोई गवाह भी है ?’

विधवा ने शिर हिलाते हुए कहा—‘नहीं, हमी क्या जानते थे ! ० चुपचाप रुपया जमा करके निकल गये थे ।’

घोषाल ने मीठी मुस्कान मुस्कराकर कहा—‘रोने-धोने से तो काम नहीं ! रुपये का मामला है, चिट्ठी नहीं, गवाह नहीं ! फिर काम कै होगा ?’

विधवा फफक-फफककर रोने लगी । रोने का फल क्या होगा, सभी पता था । भगत ने मुँह खोला; गुमाश्ते की तरफ घूर कर बोला—‘मुझे ख आ रहा है न जाने किसने पाँच सौ जमा करवाये, फिर निकलवाया नहीं । तु ज़रा एक बार पुराने बही-खाते देख तो जाओ, कहीं कुछ लिखा ज़रूर होगा ।’

घोषाल तिनककर बोला—‘कौन इस बेवक्त में भूत का बेगार करने जायगा ? गवाह नहीं, रसीद-पत्र नहीं’.....

बीच में ही किवाड़ की ओट से जवाब आया—‘चिट्ठी नहीं है तो क्या आ ? बाँभन का रुपया डूबेगा । पुरानी बहियाँ निकालिये, आपसे न हो तो मेरे दीजिये, मैं देख दूँ ।’

सभी विस्मित हो उठे । सब की नज़र उस ओर गई । पर, जिसने हुकुम देया वह नहीं दिखाई दी ।

गुमाश्ता नरम पड़ गया, बोला—‘कितने साल हो गये । बहन, इतना पुराना खाता खोज निकालना आसान थोड़े ही है । बहियों की ढेर पड़ी है, जमा है, तो कहीं भागा जाता है मिल ही जायगा ।’..... गुमाश्ता ने विधवा को जल्द करके कहा—‘बेटी, रोती क्यों हो ? वाजिब रकम तुम्हारी जायगी कहाँ ? अन्धू, कल एक दफे मेरे घर आना, फुरसत में ठिकाने से खाता निकाल दूँगा । आज तो बड़ी बेर हो गई ?’

विधवा फौरन राजी हो गई—‘तो ठीक गुमाश्त बाबू कल सबेरे मैं आपके आऊँगी ।’

‘अन्धू, आना’—घोषाल ने शिर हिला दिया और सामने की खुली बही को बन्द करके रख दिया ।

पर किस बहाने से विधवा को अपने घर कल बुला रहा है, जानने वाले भी भाँति यह जान गये । अन्दर से गौरी बोली—‘आठ साल पहले की बात तो तेरह सौ एक साल की बही निकालिये न ?’

गुमाश्ता बोला—‘इतनी जल्दी क्या पड़ी है बहन ?’

गौरी ने कहा—‘दीजिये, मैं देख देती हूँ । ब्राह्मणी, बेचारी दो कोस चलकर आई हैं, इस कड़ी धूप में चलकर दो कोस जायेंगी और आप हैं कि कल फिर बुला रहे हैं ! सीधी सी बात. इतना भ्रम क्यों बढ़ाते हैं ?’

भगत ने कहा—‘ठीक ही तो कहती है मेरी बहन । घोषाल बाबू, ब्राह्मणी को परेशान करने से क्या फायदा ! बाप रे बाप ! निकालो बही, जल्दी देख दो ।’

गुमाश्ता कुछ बोला नहीं, गुस्सा के मारे तमतमा उठा और तेरह सौ एक साल का खाता निकाल लाया । दस-पाँच मिनट उलट-पुलट कर एकाएक उसकी आँखें चमक उठीं—‘वाह क्या खूब ! गौरी बहन की याद भी गज़ब की है ! ठीक उसी साल का बही में जमा लिखा है । यह देखिये, रामलोचन चटर्जी, जमा पाँच सौ.....

भगत बोला—‘अरे भाई, जल्दी करो, ब्याज निकाल दो ।’

गुमाश्ता विस्मित होकर बोला—‘ब्याज ?’

महाजन बोला—‘तो क्या ब्याज नहीं दोगे ? रुपया तो चलता रहा न ! बैठा तो नहीं था ? आठ साल का सूद होगा, यही दो चार मास छोड़ कर ।’

हिसाब करने पर ब्याज और सूद समेत साढ़े सात सौ रुपये हुये । भगत ने बहन को लक्ष्य करके कहा—‘तो सन्दूक से निकाल लाओ !—हाँ जी तुम्हें कुल रुपया चाहिये ?’

विधवा के हृदय की बात को भगवान ने सुन लिया; आँख पोंछ कर प्रकट रूप से उसने कहा—‘न बाबू इतना रुपैया लेकर हम क्या करेंगे, सिर्फ पचास चाहिए ।’

‘हाँ, सो ले जाओ । गुमाश्ता बाबू, ज़रा बही इधर बढ़ाना, सही व दूँ । बाकी रुपयों का तुम एक चिह्ना बना दो ।’

घोषाल ने कहा—‘मैं ही कर देता हूँ सही । तुम.....’

भगत बोला—‘नहीं नहीं मुझे देखने दो, अपनी आँखों से देख भी लूँगा ।’

पुरानी बही लेकर महाजन खुद देखने लगा । ज़रा देर बाद मुस्कराते हुए बोला—‘ब्राह्मण के नाम पर एक जोड़ा कंगन जमा है, असली सोने का मुझे पता है न, मेरे गुमाश्ता साहब की आँखें कभी-कभी फिसल जाती हैं वह

देखकर भी देख नहीं पाते ।’...इतना कहकर भगत उसी किवाड़ की ओर ताक कर मुस्कराने लगा । इतने लोगों के सामने मालिक के मुँह से अपने बारे में व्यंग्य सुनकर गुमाश्ते का चेहरा काला-स्याह हो गया ।

खेल खतम हो चुका था । अपूर्व अपने साथियों को लेकर जलती धूल वाले रास्ते पर निकल आया । उसके मन में विस्मय मचा हुआ था । घोषाल भी साथ था, उसने सादर अभ्यर्थना करके कहा—‘आइये । गुड़ की जरा सी डली खाकर पानी तो पी लीजिये गरीब के घर में ।’ अपूर्व चुपचाप पीछे-पीछे चला । गुमाश्ते के बदन में आग लगी हुई थी । उसने एकादशी के बारे में कहा—‘देखा, छोटी जात के लोग कैसे होते हैं । आप जैसे ब्राह्मण पुत्र, पैरों की धूल घर में पड़ी, साले के सोलह पुरखा तर गये ! पिसाच कहीं का । पाँच गन्डा पैसा देकर मानों भिखारी से पल्ला छुड़ाना चाहता था ! देखा आपने ?’

विपिन बोला—‘दो दिन सब्र कीजिये, हरामजादे का नाई-धोबी बन्द करवाकर दिखला देता हूँ । राखाल बाबू इस गाँव के मालिक हमारे अपने आदमी ठहरे । छः धार आँसू न रुलाया तो मेरे नाम पर थूक देना घोषाल बाबू ।’

गुमाश्ता ने कहा—‘मैं हूँ ब्राह्मण । बिना संध्यागायत्री के पानी तक नहीं पीता, कंगन के लिए भरा दुपहर में कैसा अपमान किया है, देखा तो आपने । ’म राम ! बेटे का भला होगा ? कभी नहीं । और वह छोकरी पानी पिलाने आई थी आपको ! अजात कहीं की !’

अपूर्व इतनी देर उन दोनों की बातों में भाग नहीं ले रहा था; सहसा ठिठककर बीच रास्ते में उसने कहा—‘अनाथ, मैं लौटता हूँ भाई, जोर की ध्यास लगी है !’

घोषाल ने आश्चर्यपूर्वक कहा—‘लौटेंगे कहाँ ? वह तो है सामने ही मेरा घर ।’

अपूर्व ने गरदन हिलाते हुए कहा—‘आप इन लोगों को ले जायँ, जाता हूँ, भगत के यहाँ, वहीं पानी पियूँगा ?’

पानी पीने भगत के घर ! सबकी आँखें कपाल पर आ गईं, खड़े गए । विपिन ने अपूर्व का हाथ पकड़कर खींचा ‘चलो चलो, दुपहर की क धूप में रास्ते पर खड़े खड़े नखरे मत करो, तुम पियोगे भगत के घर पानी ?’

अपूर्व ने अपना हाथ छुड़ा लिया, दृढ़तापूर्वक कहा—‘सच, मैं उस हाथ से पानी पीने जा रहा हूँ । तुम लोग घोंघाल बाबू के घर से पानी आओ । इसी पेड़ के नीचे मैं प्रतीक्षा करूँगा ।’

उसका शान्त और दृढ़ कठस्वर सुनकर घोंघाल हतप्रभ हो गया, बोला—‘पता है, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ?’

अनाथ ने कहा—‘पागल तो नहीं हो गये हो अपूर्व ?’

अपूर्व ने जवाब दिया—‘पता नहीं क्या हो गया हूँ । अगर प्रायश्चित्त करना होगा तो पीछे शांतिपूर्वक स्वस्थ मन से कर लिया जायगा । अभी मैं अपने को रोक नहीं सकता !... ..’

वह इतना कहकर उस कड़ी धूप में झट-झट पैर बढ़ाता हुआ एकादश के घर की ओर चला गया ।

